॥राम॥

मानस-करुनानिधान

शिलोंग (मेघालय)

एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आन की।।
चरनपीठ करुनानिधान के।
जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।।

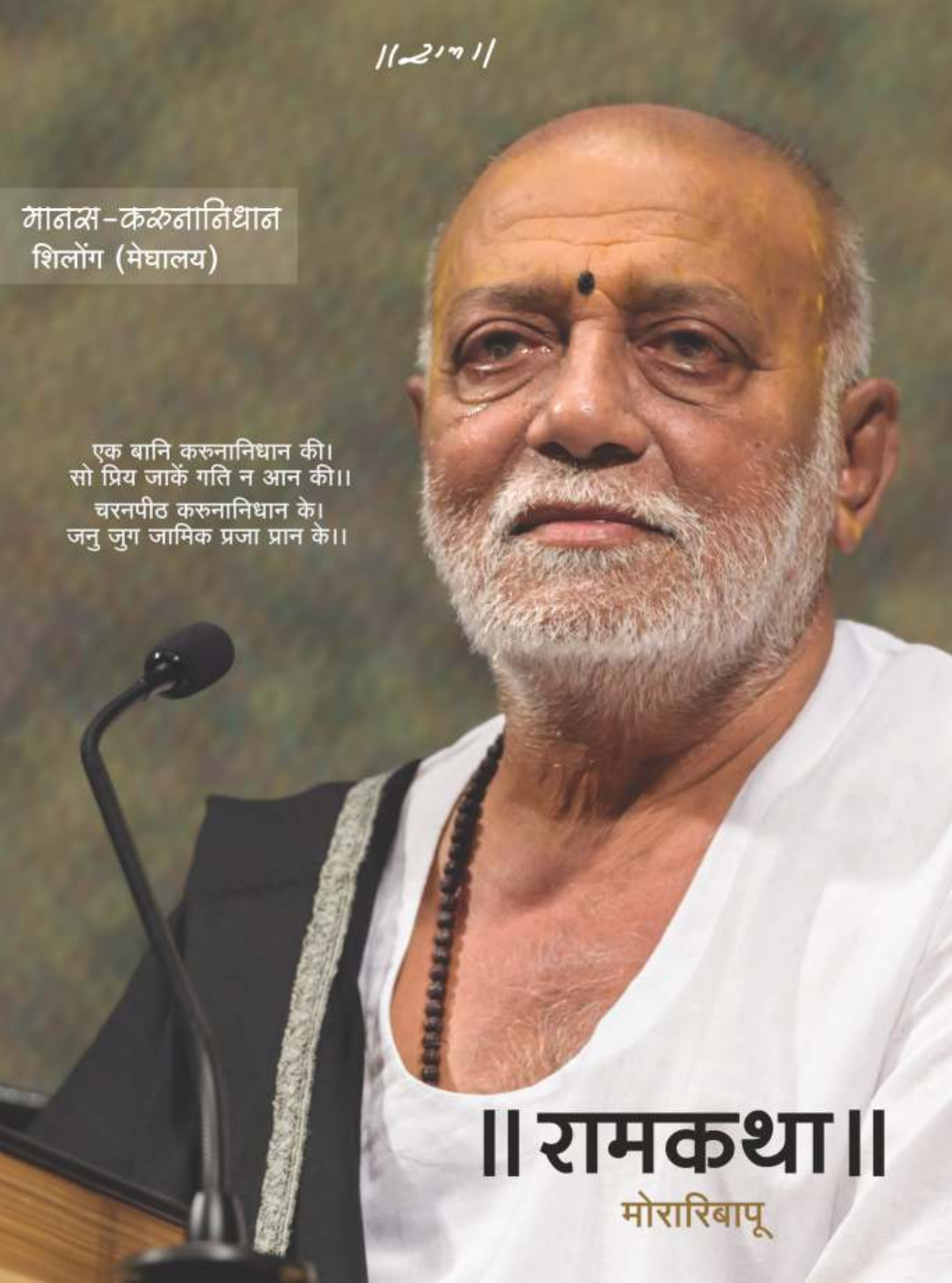

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

|| रामकथा ||
मानस-करुनानिधान

मोरारिबापू
शिलोंग (मेघालय)
दिनांक : २६-९-२०१५ से ४-१०-२०१५
कथा-क्रमांक : ७८२

प्रकाशन :
नवम्बर, २०१६

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू की रामकथा 'मानस-करुनानिधान' शिलोंग (मेघालय) की रमणीय भूमि पर दिनांक २६-९-२०१५ से ४-१०-२०१५ के नौं दिनों में सम्पन्न हुई। करुनानिधान की बातें हमारे जीवन में ठीक से स्वीकृत हो जाए, हमारे हृदय में उसकी स्थापना हो जाए तो व्यक्ति की नहीं, परिवार की नहीं, राष्ट्र की नहीं, विश्व की नहीं, समुचे अस्तित्व की बहुत-सी ग्लानि, बहुत-सी चिंताएं, बहुत-सा बोझ नष्ट हो सकता है; ऐसी समझ और श्रद्धा के साथ बापू ने इस कथा का केन्द्रस्थ विषय 'मानस-करुनानिधान' पसंद किया।

'मानस' में 'करुना' शब्द लिए हुए 'करुनासिंधु', 'करुनाकर', 'करुनाऐन' जैसे कई शब्दों का अनेकश: निर्देश है, लेकिन 'करुनानिधान' शब्द गोस्वामीजी ने केवल पांच बार प्रयुक्त किया है, उसका निर्देश करते हुए बापू ने करुनानिधान से जुड़ी हुई पांच वस्तु का परिचय दिया। करुणानिधान की चरणपीठ यानी पादुका; करुणानिधान की बानी; करुणानिधान की अतिशय प्रिय जानकी; करुणानिधान की सत्यशपथ; और करुणानिधान के शील के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किए। साथ ही बापू का ऐसा निवेदन रहा कि 'रामचरित मानस' स्वयं करुणानिधान है।

करुणा कौन-सी चीज है और कैसे प्रकट होती है, उसके बारे में बापू ने सात सूत्र देते हुए कहा कि करुणा एक ऐसी ऊंची अवस्था है जो दीन पर भी होती है, सम्पन्न पर भी होती है। करुणा सब पर समान रूप में बरसती है। करुणा मेहनत से नहीं आती; खरीदी नहीं जाती बल्कि करुणा का मूल्य चुकाना पड़ता है। करुणा किसी बुद्धपुरुष की कृपा से स्वभाव बनकर आती है। करुणा योगी के हृदय की उपज है, भोगी के हृदय की उपज नहीं है। क्रोध नर्क है, करुणा स्वर्ग है। करुणा घन पदार्थ नहीं है, करुणा प्रवाही है। और बुद्धपुरुष की पादुकारूप करुणा हमारे सिर पर होती है।

करुणानिधान किसे कहे, इस विषय पर बापू का कहना हुआ कि हम उसका स्मरण न करे तो भी जो बुद्धपुरुष-सद्गुरु हमारा स्मरण करे वो करुणानिधान है। हम उनकी प्रतीक्षा न करे तो भी वो हमारी प्रतीक्षा करे वो करुणानिधान है। वो बुद्धपुरुष करुणानिधान है, जो केवल देना ही जानता है, लेना जानता ही नहीं। वो खुद को भी दे देता है। ऐसा परमदानी करुणानिधान है। और करुणानिधान वो है कि खुद को भी पता नहीं कि मुझ में कितनी करुणा है?

'मानस-करुनानिधान' कथा में बापू ने व्यासपीठ से 'मानस' और 'विनयपत्रिका' अंतर्गत करुणानिधान की जो परिभाषाएं है उसका भाष्य किया एवम् अपने निजी ढंग से करुणानिधान की व्याख्या-विभावना प्रस्तुत की।

– नीतिन वडगामा

'रामचरित मानस' स्वयं करुणानिधान है

मानस-करुनानिधान : १

एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की।।
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।।

बाप! परमात्मा के अपार, असीम अनुग्रह से आज से नव दिन के लिए 'रामचरित मानस' यानि रामकथा का नवदिवसीय प्रेमयज्ञ शुरू हुआ है; केवल, केवल, केवल अनुग्रह! मनोरथ था कि जहां-जहां व्यासपीठ नहीं जा पाई ऐसे स्थानों में जाकर नवदिवसीय एक अनुष्ठान किया जाय। और अवसर आ गया कि हमारे परमस्नेही रवीन्द्रभैया, समग्र चमाडिया परिवार ने इस मनोरथ को सेया और आज हम इस मनोरथ के कारण कथा का आरंभ कर रहे हैं। ये पूर्वोत्तरीय प्रांत; कई ऐसे छोटे-छोटे खंड है, जहां मेरी व्यासपीठ को जाने का मनोरथ है। इनमें से एक स्थान ये। बडी सुंदर, रमणीय प्रकृति दिखती है। ऐसे रमणीय स्थान में भगवान राम की कथा होने जा रही है उसकी मुझे बड़ी खुशी है।

अब मेरे मन में प्रश्न था कि कौन से विषय पर कथा का संवाद करूं? वैसे एक बार 'रामचरित मानस' को लेकर 'मानस-करुणा' कथा हो चुकी है। लेकिन कुछ समय से ये पंक्ति जब सुनी-

एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आन की।।

'मानस' की ये अत्यंत महत्व की पंक्ति इस रूप में मैंने सुनी तब से मुझे लगा कि क्यों न एक बार मैं 'करुनानिधान' पर बोलूं? 'करुणा' पर तो बोल चुका हूं। अब क्या बोला, कैसा प्रवाह चला वो तो परमात्मा जाने! बात तो गई! लेकिन ये घूम रहा था। तो सोचा कि यहां 'मानस-करुनानिधान' पर कुछ विशेष संवाद हो। यद्यपि 'रामचरित मानस' में 'करुना' शब्द लिए हुए बहुत शब्द है। 'करुनासिंधु', 'करुनाकर', 'करुनाऐन' बहुत शब्द है। लेकिन 'करुनानिधान' शब्द केवल पांच बार है। और गोस्वामीजी जैसी जाग्रत हस्ती मेरी दृष्टि से जब ये शब्द का प्रयोग इतना कम बार कर रहे हैं, खास-खास मौके पर कर रहे हैं, तो भीतर एक चाह उठी कि 'मानस-करुनानिधान' पर बोलूं। क्योंकि मेरी समझ ये है कि ये करुणानिधान की बातें हमारे जीवन में ठीक से स्वीकृत हो जाए तो; किसी को न ये छू पाए तो

अल्लाह जाने! बाकी ये करुणानिधान की जो बातचीत करनी है, ये बात समझ में आ जाए एक बार और दृढ़ हो जाए, करुणानिधान की स्थापना हमारे हृदय में हो जाए, तो व्यक्ति की नहीं, परिवार की नहीं, राष्ट्र की नहीं, विश्व की नहीं, समुचे अस्तित्व की बहुत-सी ग्लानि, बहुत-सी चिंताएं, बहुत-सा बोझ नष्ट हो सकता है। नव दिन है हमारे पास। हम और आप बात करेंगे करुणानिधान के बारे में।

जनक सुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।

वहां भी 'करुनानिधान' शब्द है।

राम दूत मैं मातु जानकी ।
सत्य सपथ करुनानिधान की।।

तो, श्री जानकीजी की वंदना 'बालकांड' में गोस्वामीजी कर रहे हैं, तब 'अतिसय प्रिय करुनानिधान की' कह कर 'करुनानिधान' शब्द का प्रयोग करते हैं। फिर ये पादुकावाले प्रसंग में 'चरनपीठ करुनानिधान के' है। 'एक बानि करुनानिधान की', ये तीसरी बार प्रयोग। चौथी बार 'सुन्दरकांड' में 'राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की।।' लेकिन 'बालकांड' में एक ओर बार-

मन जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो ।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो ।।

यद्यपि करुणा तो बहती रहती है, करनी नहीं पड़ती। और करुणा महसूस होती है। उस पर मीमांसा करने की यद्यपि जरा भी जरूरत नहीं है। लेकिन इस करुणानिधान की करुणा का अनुभव करे। बहुत-सी ग्लानि का निवारण हो जाएगा। मेरा भरोसा है। आदमी निर्भार हो जाएगा। तो, इस कथा का केन्द्रीय विचार 'मानस-करुनानिधान' रहेगा। उसके आधार पर पूरी कथा हम गाएंगे, आप से बातें करेंगे। एक बार फिर ये दोनों पंक्तियां गा लें-

एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आन की।।
चरनपीठ करुनानिधान के।
जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।।

तो बाप! पांच बस्तु है; इस के इर्द-गिर्द में, मैं आप से बातें करूंगा। पहली बात है, करुणानिधान की चरणपीठ; पादुका। यहां बड़ा प्यारा शब्द प्रयोग हुआ है। ये पादुका किसकी है? और कोई व्यक्ति का नाम नहीं दिया गया। ये करुणानिधान की पादुका है। दूसरी बात, 'एक बानि करुनानिधान की।' करुणानिधान की एकमात्र बानी। तीसरा सूत्र आया, करुणानिधान की अतिशय प्रिय जानकी। ये तीसरी बात। चौथी बात आई, करुणानिधान की सत्य शपथ, कसम। पांचवीं बात है, 'करुनानिधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो।' करुणानिधान के शील के बारे में कुछ संदेश दिया जा रहा है। तो, मेरी दृष्टि में ग्लानि, चिंता और मानसिक तनाव से मुक्त होने के लिए करुणानिधान की प्रतिष्ठा जीवन में हो जाए तो इतनी प्यारी पृथ्वी पर जीने का ओर आनंद हम ले सकते हैं। तो ये हुई मूल बात। छठ्ठा सूत्र ये आयेगा कि, 'मानस' स्वयं करुणानिधान है। ये स्वयं करुणानिधान ग्रंथ है। तो, उस पर विशेष चर्चा हम करेंगे। मैं कहता हूं, 'रामचरित मानस' स्वयं करुणानिधान है। मैं तो वहां तक कहता हूं कि 'रामचरित मानस' जिसे मिल गया हो उसको राम मिलने की चिंता नहीं करनी चाहिए। राम मिले न मिले कोई जरूरत नहीं, जिसको 'रामचरित मानस' मिल गया। मैं तो इसी भरोसे पर जी रहा हूं।

तो, 'एक बानि करुनानिधान की'; कितना भरोसा बढ़ जाए, साहब! कि करुणानिधान की एक ऐसी बानी है, एकमात्र एक ऐसी बानी है कि मुझे वो प्रिय है, मुझे उनसे प्यार है, मैं मोहब्बत करता हूं। जिसको सपने में भी कोई दूसरी गति न हो। 'सो प्रिय जाकें गति न आन की।' ऐसा परमात्मा का एक बोल है।

एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आन की।।

खुद पर विश्वास दृढ़ करना है। कोई है ऐसा परमतत्त्व, उस पर भरोसा दृढ़ करना हो तो ये करुणानिधानवाली बातें हमें बहुत मदद कर सकती है।

कथा का पहला दिन सदैव ग्रंथपरिचय का होता है कि जिस ग्रंथ को केन्द्र में रखकर वक्ता, श्रोता के साथ संवाद रचेगा वो ग्रंथ क्या है? आप सब जानते हैं। सात सोपान में जिसकी व्यवस्था की गई है। वाल्मीकिजी ने उसको 'कांड' शब्द दिया है। यें रूप है, उपर का रूप है। ऐसे ग्रंथ को लेकर आज से कथा शुरू हो रही है। तुलसीदासजी ने सात सोपान में ग्रंथ का विस्तार किया है। आप जानते हैं, 'मानस' में सात-सात वस्तु की बहुत गणना की है। संतों ने उस पर बहुत प्रकाश डाला है।

तो, सात सोपान। शायद एक बार मेरी व्यासपीठ ने चर्चा की थी कि 'मानस' के सात सोपान है वो अध्यात्मजगत की सप्तपदी है। जैसे लौकिक जगत की सप्तपदी होती है कि ब्याह के पंडाल में, मंडप मैं वर-कन्या और एक संस्कार है सप्तपदी का। और ये सप्तपदी लौकिक है। उसमें ये सप्तपदी के कारण दोनों एक हो जाते हैं, बस। 'रामचरित मानस' अध्यात्मजगत की सप्तपदी है। और ये जीव को शिव के साथ एक कर देती है। जीव को इतना शिव के साथ एक कर देती है ये सप्तपदी कि जीव को अपने आप में शिवत्व का अनुभव होने लगे।

'बालकांड' प्रथम पद है आध्यात्मिक सप्तपदी का। इस सप्तपदी के प्रथम पद को मेरी व्यासपीठ नाम देना चाहती है, 'निर्दोष चित्त।' 'बालकांड' शब्द देकर ही संतों ने हमें निर्दोष चित्त की ओर संकेत कर दिया। आजकल की टेक्नोलोजी और पढ़ाई है उसमें बच्चें भी अपने दिमाग में जानकारी इतनी लेकर घूमते हैं कि एक थोड़ा घाटा होता जा रहा है कि कहीं ये अत्यंत जानकारी आज की टेक्नोलोजी के कारण बालमानस की जो सहज चित्तशुद्धि होनी चाहिए उसमें अवरोध न लगा दे। थोड़ी चिंता का विषय है। आज ही हमारी चर्चा हो रही थी कि केम्ब्रिज युनिवर्सिटी में एक छात्र को पूछा कि तेरा भगवान कौन? तो छात्र ने कहा कि 'गूगल!' क्योंकि वो मुझे मेरा हर सवाल का जवाब देता है। चित्त की निर्दोषता बनी रहे। आध्यात्मिक जगत की प्रथम सप्तपदी है चित्त की निर्दोषता। बच्चों में से आश्चर्य चला गया! ठीक है, विज्ञान का भी स्वागत होना चाहिए लेकिन हरेक पेरेन्ट्स को सावधान रहना चाहिए।

दूसरा सोपान 'अयोध्याकांड' है। अध्यात्म-सप्तपदी का 'मानस' के आधार पर दूसरा कदम, वो है सत्य का निर्वहण करना। बचपन से चित्त दूषित हो जाए तो सप्तपदी के दूसरे पैर में व्यक्ति सत्य का निर्वहण नहीं कर सकता। बचपन में ही चित्त जो दूषित कर दिया गया तो वो इतना सहज हो जाएगा कि दूसरे पद में सत्य का निर्वहण नहीं होगा। कई मुल्क में बेईमानी करना उसके लोही में ही है। चित्त दूषित होता जा रहा है ऐसे समय में चित्त निर्दोष बना रहे। तो, दूसरा कदम सत्य का निर्वहण होगा।

'मानस' की सप्तपदी का तीसरा पद 'अरण्यकांड' जो है, वो जीवन में थोड़ी-सी भी भक्ति आ जाए किसी संत की कृपा से तो सप्तपदी का तीसरा पद सफल हो जाए। पूरेपूरी भक्ति की जरूरत नहीं। हम शायद झेल भी न पाए! 'अरण्यकांड' का भगवान का ये वचन मुझे बहुत प्रिय है; शबरी, ये नव प्रकार की भक्ति तो पूर्ण है लेकिन इनमें से एक भी हो-

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई ।
नारि पुरुष सचराचर कोई ।।

'शबरी, ये नव प्रकार की भक्ति तो पूर्ण है लेकिन इनमें से एक भी हो, 'सोई अतिसय प्रिय भामिनि मोरें।' प्रभु की ये भी एक बानी है कि एक भी भक्ति हो किसी में तो भी मुझे अत्यंत प्रिय है। मझधार में तिनके का सहारा भी बहुत है, बचा देता है।

चौथा पद 'किष्किन्धाकांड' में। आध्यात्मिक जगत में पतंजलि भगवान ने कहा है इसलिए मैं कह रहा हूं, आदमी को दुश्मन के साथ भी जहां तक संभव हो, ठीक जो बात हो तो मैत्री रखना। ये चतुर्पद है। बड़ा प्यारा शब्द है 'मैत्री।' मैत्री सद्गुणों के लिस्ट में आता है। तो, जीवन में मित्रता बनी रहे। किसी शायर ने कहा था कि किसी से इतनी हद तक दुश्मनी मत करो कि कभी दोस्ती करनी पड़े तो हम उसकी आंख से आंख न डाल सके। लाओत्सु का सूत्र है कि साधु किसी से हारता नहीं। साधु को कोई हरा नहीं सकता। जरा विचित्र लगता है! साधु कभी हारता नहीं। क्योंकि साधु हृदय में निर्णय करके बैठा है कि में ओलरेडी हारा हुआ हूं। इसलिए हमारे यहां आया, 'हारे को हरिनाम।' कोई नहीं हरा सकता। दलील करो तो तुम्हें हराए ना? नरसिहं महेता को याद करूं, 'एवा रे अमे एवा रे...' और साधु की बात आई तो मैं आप से एक ये भी निवेदन करूं कि साधु साधन नहीं है, साधु साध्य है। हम कभी-कभी साधु को साधन बना देते हैं! अभी दो-तीन दिन पहले मेरे पास एक मेसेज आया। बहुत उपर से मेसेज आया कि 'बापू, अमरिका में आप की कथा है। आप के बहुत श्रोता है तो आप एक अपील करे कि सब ठीक रहे।' तो मैंने मेरी शालीनता से जवाब दिया कि मेरा ये काम नहीं है कि मैं अपील करूं। साधु को साधन मत बनाओ। वह तो तुम्हारा साध्य है। कोई साधु मिला तो उसका मतलब ये हुआ कि हमें साध्य मिल गया। फिर साध्य को साधन बनाना बेवकूफ़ी है! तो, साधु किसी से हारता नहीं, उसका कोई दुश्मन नहीं होता।

साधु साधन नहीं है, साधु साध्य है। हम कभी-कभी साधु को साधन बना देते हैं! अभी दो-तीन दिन पहले मेरे पास एक मेसेज आया। बहुत उपर से मेसेज आया कि 'बापू, अमरिका में आप की कथा है। आप के बहुत श्रोता है तो आप एक अपील करे कि सब ठीक रहे।' तो मैंने मेरी शालीनता से जवाब दिया कि मेरा ये काम नहीं है कि मैं अपील करूं। साधु को साधन मत बनाओ। वह तो तुम्हारा साध्य है। कोई साधु मिला तो उसका मतलब ये हुआ कि हमें साध्य मिल गया। फिर साध्य को साधन बनाना बेवकूफ़ी है!

पांचवां पद है 'सुन्दरकांड।' आध्यात्मिक सप्तपदी की ये पांचवीं पदी है। रावण के पास बहुत कुछ है लेकिन रावण सुंदर नहीं है। उसका रूप देखने से पता तो नहीं लगता कोई सुंदरता हो ऐसा तो नहीं लगता। यहां चर्चा है आंतरिक सौंदर्य की। ये सुंदरता रावण में नहीं दिखती है। 'मानस' की सप्तपदी की ये पांचवीं पदी जो है, ये पवित्र सुंदरता। जितनी मात्रा में जीवन आंतर्-बाह्य सुंदर हो ये अध्यात्मजगत की सप्तपदी है।

छठ्ठा सोपान फ़िर 'लंकाकांड' है। 'लंकाकांड' में तो गोस्वामीजी भी कहते हैं, राक्षसलोग पाप है, दुर्गुण है। उसका विनाश होना चाहिए। मुझे लगता है कि पांच ये पदी जब आदमी साधना के द्वारा यात्रा करता है तो सप्तपदी का छठ्ठा पद उसको विकारों से मुक्त करेगा। कई प्रकार की कमजोरियां भीतर की नष्ट हो जाएगी। और फिर सातवां और अंतिम 'उत्तरकांड।' जिसमें एक प्रकार का निर्णय है और वो है-

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी ।
राम नमामि नमामि नमामी ।।

'मेरे ठाकुर को सेये बिना आदमी तैर नहीं पाएगा, ऐसा एक परम तत्त्व है। उसको नमामि, नमामि, नमामी।' ये सप्तपदी है। जिसको शिवतत्त्व के साथ इतना एकरूप हो ना हो उस के लिए 'मानस' एक सप्तपदी है।

ऐसे 'रामचरित मानस' की कथा मेघालय की इस रमणीय भूमि पर भगवद्कृपा से शुरू हो रही है तब आरंभ में गणेश और सरस्वती की वंदना कर लें, गुरु की वंदना कर लें और आज की रसम पूरी कर लें।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्काररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ।।
नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।।
जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ।।
कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन ।।
बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ।।

पंच देवों की वंदना की और गुरु परंपरा की वंदना गोस्वामीजी ने की। गुरुचरणरज से अपने नेत्रों को पवित्र करके वो रामकथा गाने का संकल्प करते हैं। और नेत्र पवित्र होते ही पूरी दुनिया प्रणम्य दिखने लगा। अच्छे-बुरे सब की वंदना गोस्वामीजी ने की है।

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

समग्र जगत को सीतारामम्य समझकर गोस्वामीजी ने प्रणाम किया। फ़िर गोस्वामीजी पारिवारिक वंदना करते हैं। और उसके बाद बीच में हनुमानजी की वंदना गोस्वामीजी करते हैं।

महाबीर बिनवउँ हनुमाना ।
राम जासु जस आप बखाना ।।
प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ।।

श्री हनुमानजी महाराज की वंदना तुलसीजी ने की। पहले दिन की कथा में हम यहां रुकते हैं। मैं आप सब को निवेदन करूं कि हनुमानजी की वंदना रामकथा में प्रवेश के लिए नितांत आवश्यक है। रामभक्ति, रामकथा, रामविश्राम, रामभरोसो, रामधाम, रामनाम- इन्हीं क्षेत्रों में प्रवेश करने के लिए हनुमानजी का आश्रय

अत्यंत आवश्यक है। लेकिन गड़बड़ी ये हुई कि लोग हनुमानजी को मानते हैं लेकिन डरते बहुत है। डरने की जरूरत नहीं है। डराये वो देव नहीं है, डराये वो दानव होता है। यदि कोई देव बनकर डराते हैं तो वो देव कम है, दानव ज्यादा है।

तो, हनुमंत आश्रय खूब करे। ये प्राणतत्त्व है, विश्वासतत्त्व है, सब कुछ है। हनुमान राम भी है, कृष्ण भी है, शिव भी है। एक हनुमानजी की आराधना करनेवाला तीनों को आत्मसात् करने लगता है। ये कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

और देवता चित्त न धरई ।
हनुमंत सेइ सर्व सुख करई ।।

श्री हनुमानजी महाराज की वंदना तुलसीजीने की-

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

•

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।

श्री हनुमानजी महाराज की वंदना की। खूब आश्रय करना हनुमानजी का। हनुमानजी रामकथा में ब्राह्मण का रूप धारण करते हैं। श्री हनुमानजी महाराज वैरागी है इसलिए मुंज नामक घास की यज्ञोपवित धारण करते हैं। तो, ये ब्राह्मण है।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए।
सुनत बिभिषन उठि तहँ आए।।

•

काँधे मूंज जनेउ साजै।।

और हनुमानजी गुरु भी है 'कृपा करहु गुरुदेव की नाइँ।' दोनों है, विप्र भी है और गुरु भी है। 'रामचरित मानस' में लिखा है कि साधक के लिए एक कवच है-

कवच अभेद बिप्र गुर पूजा ।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।

उसका मूल अर्थ है, आप ब्राह्मण की पूजा करे; ब्राह्मण वंदनीय है; आप ब्राह्मण की पूजा करे तो आप को सुरक्षा मिले, कवच मिले। लेकिन अभेद्य नहीं है। वो कभी भी टूट सकता है। कई कवच महत्त्व के होते हैं लेकिन शस्त्र भी ऐसे होते हैं कि कवच तोड़ दिए जाते हैं। ब्राह्मण पूजनीय है। उसकी पूजा करने से साधक को सुरक्षा मिलती है, कवच मिलता है लेकिन कवच अभेद्य नहीं है। इसलिए तुलसी ने कहा कि उसके बाद गुरु। गुरु का आश्रय करोगे तो कवच अभेद्य हो जाएगा। तो, हनुमानजी ब्राह्मण भी है, गुरु भी है इसलिए जीवन में अभेद्य कवच के लिए किसी भी धर्म और मजहब के लोग हो; क्या फ़र्क पड़ता है? ये तो प्राणतत्त्व है। भाई हो, बहन हो, क्या फ़र्क पड़ता है? और बहन लोग पूजा न कर सके ये भ्रांति तो निकाल ही दो। कोई पंडित कहे कि दोष लगेगा तो ये दोष मुझे दे दो। और कलियुग में हनुमानजी की तंत्र-बंत्रवाली साधना भी न करो।

स्वयं जीवन ही साधना है। मुस्कुराते हुए सुबह जागो, साधना है। देहशुद्धि साधना है। कोई संस्कृत श्लोक बोलो, साधना है। नमाज अदा करो, साधना है। बच्चों के साथ बैठकर नास्ता करो, साधना है। बहुत टीपटोप आप को पसंद हो तो वो भी करो लेकिन सात्त्विक पोशाक साधना है। सादा आहार साधना है। सम्यक् बोल साधना है। साधना को जीवन से बिलग क्यों करते हो? साधना को बिलग करनी हो वो प्लीज, हिमालय की गुफ़ाओं में चले जाए! हमने साधना को जीवन से बिलग कर दिया है! जीवन ही साधना है। और क्या? परिवार का गुजारा करना, पड़ोशी का शुभ करना, कहीं अच्छा करना, प्रसिद्धिमुक्त हो कर जीना, मुस्कुराते रहना। जीवन ही साधना है। तो, श्री हनुमानजी महाराज का आश्रय करें। उसके बाद और वंदना आती है क्रम में। आज की कथा को यहां ही मैं हनुमंत स्मरण के साथ रोक रहा हूं।

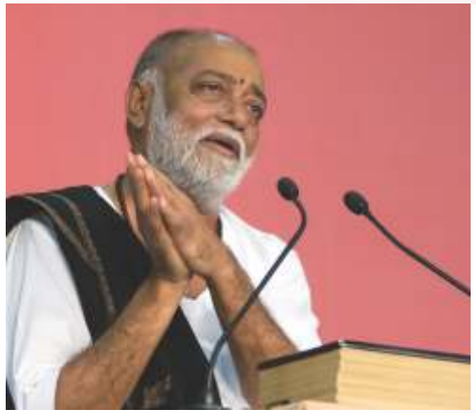

साधन सदैव सांप्रदायिक है, साध्य सदैव बिनसांप्रदायिक है

मानस-करुनानिधान : २

कल के कुछ संवाद के बारे में कुछ प्यारे प्रश्न है। 'बापू, कल आपने कहा कि साधु को साधन मत बनाना क्योंकि साधु साध्य है।' एक श्रोता का ये आत्मनिवेदन है। कहते हैं, 'बापू, मैंने साधु का बहुत उपयोग किया है। मैं बहुत दिल से क्षमाप्रार्थी हूं।' पहली बात तो ये कि मैं जब 'साधु' शब्द का प्रयोग करता हूं तब केवल उसको प्लीझ, ज्ञातिवाचक मत समझना। यद्यपि सब जानते हैं कि साधु कोई ज्ञाति नहीं है। साधु कोई जाति नहीं है। साधु ब्राह्मण नहीं है। साधु क्षत्रिय नहीं है। साधु वैश्य नहीं है। साधु, जिस शब्द मैं नहीं बोलता, वो शूद्र नहीं है। साधु मीन्स, जागृत चेतना, जागृत व्यक्ति। साधु मीन्स, सद्गुरु। साधु मीन्स बुद्धपुरुष। इसीलिए मेरा ये सौभाग्य है कि मैं साधु परिवार से हूं। लेकिन इसका मतलब आप ये मत करिएगा कि आप को क्षमा मागनी पड़े। मेरे कारण आपको कोई माफ़ी मांगने की आवश्यक्ता नहीं है। साधु का मतलब समझिएगा। एक व्यक्ति को छोड़ दीजिए। मैं समझता हूं कि 'साधु' शब्द लगने से कोई बात इतनी नहीं बनती। अच्छा लगता है खुद को साधु कहलाना। मैं दिल से कहूं, मुझे अच्छा लगता है। आप पहुंचे हुए साधु को साधन बना ही नहीं सकते। क्योंकि साधन सीमित होता है। जैसे आदमी की आयु की सीमा है। देह की भी एक सीमा है। साधन की भी एक सीमा है। कब तक उपयोग करोगे? यदि हमने बुद्धपुरुष को साध्य समझ लिया तो तुम्हें और हमें उसका उपयोग नहीं करना पड़ेगा। वो हमारे पर काम करेगा। मैं आपसे कहूं, दुनियादारी है, निर्वाह करना चाहिए क्योंकि हम सब संसारी है। परिवार में कोई बीमार हो, अस्पताल में दाखिल हो तो साधु को यदि आप साधन मानते हो तो जबरदस्ती आपको अस्पताल ले जाएंगे। लेकिन साध्य मानते होगे तो आप अनुभव करोगे कि वो जहां है वहां से काम करेगा। ये शाश्वती का नियम है। ये मेरा नियम नहीं है, शाश्वती का नियम है। और 'शाश्वती' शब्द मेरा नहीं है, तथागत बुद्ध का है। इसका मतलब आप ये न करे कि न बुलाये, न ले जाए। क्योंकि हमारी सीमा है। क्योंकि ये स्वत: साध्य है। इसलिए आपने तो लिख दिया लेकिन कई लोग ऐसा करते होंगे कई साधुओं के बारे में। हम एक इन्सान है। हां, जरूर मेरी कोशिश है, गुरुकृपा से-

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।

तुलसी के अमृतवचन है। तुलसी कहते हैं, परमात्मा करे, कभी मैं बुद्धपुरुष की तरह जीउं। ये ख्वाहिश, ये उम्मीद सब

की होनी चाहिए। और देखो, 'कबहुँक'; कभी एक लम्हें के लिए भी। चंद पलें। और गोस्वामीजी कहते हैं, परमात्मा की कृपा से मुझे साधु स्वभाव प्राप्त हो।

श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपातें संत-सुभाव गहौंगो।

•

परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भगति लहौंगो।।

तो, ये कोई क्षमा मांगने की मेरे श्रोता को जरूरत नहीं है। सावधान रहे। और एक बात और समझ लो कि साधन समझोगे तो साधन सदैव सांप्रदायिक होता है। सूफ़ी आपको एक साधन दिखाएगा। जैन आपको एक साधन देगा। वैष्णव आपको कोई दूसरा साधन देगा। ईस्लाम धर्म कोई साधन पकड़ायेगा। साधन सदैव सांप्रदायिक है, साध्य सदैव बिनसांप्रदायिक है। वो कोई दीवारों में आबद्ध नहीं होते। पवित्रतम शब्दों में से एक शब्द है 'साधु।' और मुझे यदि कोई पूछे कि 'साधु'का पर्याय क्या? मेरी समझ ये है कि 'साधु' का सगोत्री शब्द है 'भजन।' और फिर 'भजन' की क्या व्याख्या करनी? जो अव्याख्येय है। होता है, चलता है। प्रतिपल चलता है। और जिसका जीवन स्वयं भजन बन जाए उनकी सभी चेष्टाएं परम मंगलमय रहती है। इसलिए भगवान शिव को अमंगल देखते हुए भी हमने मंगल की राशि माना है।

नाम प्रसाद संभु अबिनासी।
साजु अमंगल मंगल रासी।।

कल कथा में कहा, साधु साधन नहीं, साध्य है। इस संदर्भ में एक जिज्ञासा। 'क्या नररूप हरि साधु साधक का साध्य बन जाने के बाद स्वयं उसके जीवन का निर्वहन करता है?' बिलकुल। हमारा कोई काम आकर करे, हमारा कोई काम बोल कर करे, हमारा कोई काम हाथ पकड़कर करे, हमारा कोई काम संग यात्रा कर करे तब हम मानते हैं। जो नररूप हरि है एसा बुद्धपुरुष, उसको तुम्हारा हाथ पकड़कर तुम्हारा काम पूरा करने की जरूरत नहीं है। ये तुम्हारा भ्रम है। उसने तुम्हारा हाथ छोड़ा ही कब है? आज हाथ पकड़ा तो क्या पहले ये सब आप खुद की मायाजाल थी? नहीं। साधु जब साध्यपुरुष में होता है तब एक महत्त्व की बात ये करता है कि वो याद देता है। खुद कुछ नहीं करता, याद देता है। परमात्मा हमारा साध्य है, मानो; तो परमात्मा मानी क्या? परमात्मा क्या देता है? 'भगवद्गीता' के न्याय से कहूं तो स्मृति देता है। परमात्मा हम को याद देता है, फिर उसकी याद हमारा सब काम करती है। वो खुद नहीं आएगा; वो असंग है, अकर्ता है। हम स्मृति खो बैठे हैं, लेकिन यहां बहुत अनंतयात्रा के हम मार्गी है। कभी स्मृति दे दी जाती है, फिर वो स्मृति बहुत काम करती है। श्रुति मात्रेण काम होता है, वैसे स्मृति मात्रेण भी काम हो जाता है। जैसे 'योगक्षेमंवहाम्यहं।' कृष्ण ने कह दिया, 'मैं कर देता हूं।' मैं कर देता हूं यानी राशन की दुकान से पांच किलो गेहूं कृष्ण भगवान घर में नहीं ड़ालेगा। लेकिन कुछ बनता है, जरूर बनता है, होता है। जो अकर्ता के द्वारा हुआ करता है। प्रश्न ये है कि स्मृति को अपने आप करने दो। स्मृति का भी अपनी और से कामनायुक्त उपयोग न करे।

स्मृति काम करती है। एक किसी की याद हमारे शरीर के केमिकल्स नहीं बदल देती? अल्लाह करे, आप को कोई संकट न आए लेकिन जब मुश्किल हो उस समय व्यासपीठ की याद आ जाए तो आप को ऐसा नहीं लगता कि मैं क्यों डिप्रेश हो रहा हूं? एक बार व्यासपीठ से ऐसा मैंने सुना था, जीवन के कोश बदल जाते हैं। सत्संग कोई मामूली चीज नहीं है। इसलिए 'श्रीमद् भागवतजी' में भगवान कपिल कहते हैं, 'स एव साधु सुकृतो।' 'हे माँ! कुछ समय के लिए भी तेरा मन किसी साधु में लग जाए तो मुक्ति मेरी प्रतीक्षा करती होगी।'

'बापू, आपने नासिक में 'रुद्राष्टक' का पाठ करने की बिधि बताई थी।' मेरे पास कोई बिधि नहीं है, पहली बात तो ये। मैं तो केवल बात करता हूं। मैं बिधि का आदमी ही नहीं हूं। मुझ पर भरोसा मत करना। मेरा कोई ठिकाना नहीं है! बिधि क्या? कोई बिधि नहीं। लेकिन आपने पूछा है कि स्त्री भी उसका पाठ कर सकती है? बिधि तो मैंने वो नहाने को कहा था कि यदि आपकी स्मृति में रहे तो 'रुद्राष्टक' का पाठ करते-करते नहाओ। उस समय ये बुद्धि निकाल दो, ये मस्तिष्क निकाल दो तो ये बोडी का जो भाग है वो मुझे मेरे अनुभव में शिवलिंग जैसा है। तो आप नहाओ तो ऐसा फिल करो कि मैं नहीं ना रहा हूं। मैं मेरे देहरूपी शिव को रुद्राभिषेक कर रहा हूं। बिधि मानी स्मरण। और पूछा है कि एक स्त्री भी ऐसा कर सकती है? स्त्री-पुरुष का भेद क्यों निकालते हो यार? आध्यात्मिक दृष्टि में स्त्री-पुरुष का क्या भेद है? ये तो व्यवहार में सब भेद है। क्रिया में विभाजन हो सकता है। बाकी कोई भी बहन ऐसे स्नान करे। और 'रुद्राष्टक' से पहले आपका रौद्राष्टक रूप जो होता है वो कम करो! मैं फिर जगद्गुरु शंकराचार्य को स्मरूं-

न मृत्युर्नशंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता च जन्म ।
न बंधुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः
चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।

अध्यात्म में क्या भेद? लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि हम अध्यात्म तक न पहुंचे और कहे कि हमें कोई भेद नहीं है और कैसा भी वर्ताव करने लगे! ये गलत है। स्वछंद नहीं होना चाहिए, सुछंद होना चाहिए। 'सुछंद' तुलसी का शब्द है। एक साधक पूछते हैं, ''सहज ध्यान की हमारी वास्तविक अवस्था है। कृष्ण जन्माष्टमी के प्रथम दिन ही पंडाल में भीड़ हो गई थी। मैं बाहर कुए की मेड पर बैठकर श्रवण करने लगा। नीचे पानी में झांका तो कृष्ण का दर्शन हुआ! वास्तव में मेरा ही प्रतिबिंब था कुए में। उपर बड़े वृक्ष के बड़े पत्ते मोरपंख का भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। बापू, आपने कभी कहा था कि खुद को खुदा मानो। इसी समय एक मित्र ने मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, 'क्या देख रहे हो?' एक कंकर पानी में गिरा। जिससे लहरें गोलाकार धूमते हुए सुदर्शनचक्र के रूप में दिखाई दी। मैंने मित्र से कहा, 'नीचे झांक कर देखो, कृष्णदर्शन होंगे।' उस समय हम दोनों की परछाई ही नजर आ रही थी। मित्र चला गया। मैंने कृष्णजी से गूफ़्तगू की। यह दिव्य जो मंझर था! ये दिव्य स्वप्न में क्यों उलजाए रखते हो? मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह सरल जीवन जीने की राह क्यों नहीं दिखाते? यह क्षणिक ध्यान की पल मेरे मन को अनंत से भर गई थी। कथा का लाभ तो सभी श्रोताओं को मिल रहा था। मुझे कृपा से विशेष लाभ मिल जाता है।''

एक श्रोता ने ये लिखा है। आप कहते हैं कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह समझा दो, उलझाओ मत। इसमें उलझन क्या? कुए में झांकने से पा लिया इससे सरल क्या? वर्ना तो 'रामायण' लिखता है कि ऐसा करो, ऐसा करो। आप को तो ये घटना ऐसे घट गई तो मौज करो। ये भ्रम हो, छाया हो, अच्छा दिखाई दिया। किसी भी व्यक्ति, वस्तु, प्राणी, झरनें, पैड़, सितारें कुछ भी देखो और देखने के बाद आप अपनी अनुभूतिओं को शब्दों में पेश न कर सको तो समझना कि इतने समय तक वो मंझर परमात्मा था। इतने समय तक। एक चिड़ियां आपने देखी और चिड़ियां को देखते-देखते आप कुछ बोल न पाए और आप आपनी फिलिंग्स वर्णन नहीं कर पाए। 'ओह' कर के रह गए तो इसका जवाब ये है कि इतने समय तक वो चिड़िया, चिड़िया नहीं है, परमात्मा है। और मंदिर में जाकर परमात्मा की सुंदर मूर्तिओं को देखने के बाद भी कोई फिलिंग्स प्रगट न हो तो निर्णय आपको करना है कि आप क्या देख रहे हैं? तो, ये बात। इमरोझ की कुछ पंक्तियां भी मेरे पास है -

उसके साथ मिलते-मिलते, उसके साथ चलते-चलते
और उसको देखते-देखते जिंदगी इस मुकाम पर पहुंच गई
जहां मैं उसमें से बोलता हूं और वो मुझमें से सुनता है।

ये बड़ा प्यारा अनुभव है। ये तो इमरोझसाहब बामुश्किल इतनी पंक्तिओं में कहते हैं। ये हिंमतवाला है। ये साहस करके इतनी पंक्तिओं में ये अनुभव लिख पाया। वर्ना ये तो लिखना मुश्किल है। ऐसी अनुभूति जितनी पल हो वो सत्संग है। इसलिए ऐसे लम्हों को चुकना मत। मैं गाता रहता हूं-

ये घड़ी न जाए बीत,
तुझे मेरे गीत बुलाते हैं।

सत्संग उसे कहते हैं जो प्रेक्टिकल मोमेन्ट को पकड़ ले। आपने कभी सोचा है कितने प्रकार के बुंद होते हैं? एक तो आदमी के शरीर से पसीने की बुंद टपकती है। कभी पेड़ के पत्ते से बारिश के बुंद गिरते हैं। कभी-कभी हमारी आंखों से आंसू के बुंद गिरे। कभी रक्तबुंद निकल गया। सुबह-सुबह ओसकण गिरती है। लेकिन एक बुंद स्वाति नक्षत्र का गिरता है तो वो एक प्रकार की मछली जो होती है वो मुंह फ़ाड़े रहती है, वो बुंद ले लेती है और तब जाकर वो बुंद सवा लाख रुपयें का मोती बन जाता है। मेरे कहने का मतलब ये है कि जीवन में कोई एक महसूसी की बुंद आ जाए तो 'वीजळीने चमकारे मोती परोवी लेवुं।' घंटों तक सत्संग थोड़ा होता है? कुछ लम्हें होते हैं। वो यदि हम पकड़ लें; उसीका नाम सत्संग है। हम और आप करीब-करीब ऐसे सत्संग की ओर यात्रा कर रहे हैं। जिसमें स्थूलता कम हो।

तो, मेरे भाई-बहन, आप के ये कुछ प्रश्न थे। जो पंक्तियां हमने ली है उसका सीधा-सादा अर्थ ये है कि करुणानिधान परमात्मा की चरणपीठ-पादुका करुणानिधान भगवान राम ने भरतजी को दी। भरतजी ने ये पादुका प्राप्त की तो भरत को क्या लगा? कि मानो ये दो पादुका मेरे साथ नहीं भेजी जा रही है लेकिन अयोध्या की प्रजा के प्राणों की रक्षा करने के लिए भगवान ने दो पादुका रक्षक के रूप में दी है। ये रक्षा है अयोध्या के प्राण की। प्राणरक्षक के रूप में ये पादुकायें मिली है। और ये पादुका ने ये दायित्व पूरा भी किया। संतों से मैंने सुना है कि चौदह साल तक अयोध्या में किसी की मृत्यु नहीं हुई। तो प्रजाप्राणों की रक्षा पादुका के माध्यम से की गई। सही बात सिद्ध हो गई। और ये केवल त्रेतायुग के लिए ही सत्य है ऐसा नहीं है। ये हर युग का सत्य है। हरेक व्यक्ति का सत्य हो सकता है। मेरा मानना है कि वक्ता बोले तो विवेक से बोले और श्रोता सुने तो विश्वास से सुने। कम से कम जितना समय सुने तब तक। उसके बाद उहापोह हो! लेकिन विवेकपूर्ण वक्तव्य को विश्वासपूर्ण दशा में यदि श्रोता सुन ले तो ये बात उसके अनुभव की बन सकती है कि पादुकाओं ने उस समय रक्षा की थी ऐसी कोई बात नहीं। किसी बुद्धपुरुष की पादुका हमारी बहुत बड़ी रक्षा है। तो, ये तो एक अर्थ है।

मेरी व्यासपीठ को जो कुछ कहना है वो वह है कि कोई पादुका आपको बताये तो उस पर रंग हो तो आप पूछे कि किसकी पादुका है, लकड़ी की है? और दूसरा भी प्रश्न पूछ सकते हैं, किस लकड़ी की है? अथवा तो चांदी की है? और पादुका का अर्थ बूट-चप्पल करें तो चमड़ें की भी हो। और चमड़ा भी हो तो कौन-सा चमड़ा है? बहुत-से प्रश्न किये जाते हैं। मेरी बात आप से ये है कि चरणपीठ सीसम-काष्ट की नहीं; सोने की-रजत की नहीं; चरणपीठ करुणानिधान की। ये धातु की चरणपादुका नहीं है, काष्ट की नहीं है। तुलसी कोई विशेष रहस्य खोलना चाहते हैं। और परमात्मा किसी का मुकुट बन सकता है तो किसी के लिए पादुका भी बन सकता है। वो प्रभु है।

तो, पादुका करुणानिधान की है, लकड़ी की नहीं है। मानी करुणानिधानपने से पादुका बनी है। कौन-सा पदार्थ है इस पादुका में? करुणानिधान। खलील जिब्रान का वाक्य है कि प्रेमी प्रेम नहीं देता, प्रेमी खुद को दे देता है। सबसे बड़ा देना खुद को समर्पित करना। करुणानिधान की पादुका है। कभी-कभी परमात्मा अपने आपको पादुका बना देते हैं। तो, करुणानिधान भगवान पादुका बने। पादुका भगवान ने भरतजी को दी। पादुका की परंपरा ये है कि हमारे पास उसका कुछ हो जिस के आधार पर हम जी सके। क्योंकि व्यक्तिगत किसी बुद्धपुरुष के साथ चलना खतरा है। राज कौशिक का एक शे'र है, मैं शब्द भूल गया हूं, उसका सार आप को सुना दूं कि मैं उसके साथ दो कदम ही चला, पूरी दुनिया अपनी आंखों से मुझे घूरकर देखने लगी। किसी बुद्धपुरुष के साथ यात्रा मुश्किल है इसीलिए ये प्रवाही व्यवस्था है कि पद न मिले तो कोई चिंता नहीं, पादुका तो है। पादुका इसीलिए प्रवाही परंपरा है।

अब प्रश्न ये होता है कि करुणा कौन पदार्थ है? करुणा के बारे में विशेष रूप से सोचना पड़ेगा। मैं बोलता रहता हूं, 'सत्य, प्रेम, करुणा।' मैं युवान भाई-बहनों से कहूं कि सत्य लिया जाए। सत्य हम बोल न भी पाए तो सत्य लिया जाए। हम दूसरे के सत्य को कुबूल करे। सत्य लिया जाए। प्रेम दिया जाए। वो मुझे प्रेम दे, फिर मैं प्रेम दूं वैसा नहीं; प्रेम दिया जाए। प्रेम का स्वभाव है देना। और करुणा में जीया जाए। करुणा में जीए। कठोरपन में जीना कोई जीना है यार? करुणा कौन चीज है? दया तो आती है और चली जाती है। करुणा उसको कहते हैं कि आने के बाद जाए ना। करुणा कैसे प्रगट हो? मुझे दो-चार बिंदु जो समझ में आते हैं वो आप के साथ केवल वार्तालाप करूं, मान नहीं लेना।

गरीब पर दया आए और जो संपन्न है उस पर दया न आए। करुणा वो पदार्थ है जो गरीब पर भी होगी, संपन्न पर भी होगी। क्योंकि करुणा समझती है कि गरीब तो गरीब है ही; ये भी बेचारा गरीब है! मैं तो कुछ समय से बोल भी रहा हूं कि धर्मसत्ता को, धनसत्ता को और राज्यसत्ता को भारत की मूल संस्कृति, सभ्यता, विद्या और कला को वश नहीं करनी चाहिए। उसकी इज्जत करनी चाहिए। तो, करुणा वो तत्त्व है जो सब पर समान रूप में बरसती है। और भगवान राम को देखिए, 'सोई करतुती बिभिषण केरी।' जिस कारण वालि को दंड दिया जाए वो ही भूल सुग्रीव करता है लेकिन प्रभु की करुणा ने उसको थोड़ी चूटकी ली लेकिन करुणा में फ़र्क नहीं पड़ा। तो, मेरी समझ में करुणा बड़ी ऊंची अवस्था का नाम है। 'विनयपत्रिका' में राम के बारे में तुलसीदासजी कहते हैं-

बंदौ रघुपति करुनानिधान।

परमात्मा के लिए 'करुणानिधान' शब्द ही क्यों? 'करुणाकर', 'करुणाशील', 'करुणासागर'-कितने शब्द है! और भी बनते हैं लेकिन इस पद में 'करुणानिधान' शब्द ही क्यों? क्योंकि करुणा भेद नहीं करती। करुणा पापी पर भी होती है, पुण्यशाली पर भी होती है। पापी है तो क्या हुआ? पापी कौन नहीं है? कौन दूध का धूला है? संतों की हिंमत पांच प्रतिशत तो लाए! जो साधु कहते हैं, 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' कौन पापी

> ये कलियुग है। हम सब संसारी जीव है। निरंतर स्मरण हमारे बस की बात नहीं है। लेकिन जब समय मिले, जितना मिले, प्रभु का नाम लो। कोई इरादा नहीं कि रामनाम ही लो, प्रभु का कोई भी नाम लो। लेकिन ये मौसम नाम की मौसम है। हम जैसों के लिए नाम केवल एक आधार है। और ये मूल आधार है। आजकल जो 'आधारकार्ड' निकला है ना? मेरी दृष्टि में हरिनाम जीवन के आधार का कार्ड है।

नहीं है? तुम्हारे घर में कोई नोकर चूक करे तो भी धीरे-धीरे उसको रुखसद दो। जीवन मूल्यवान है। मर्हूम मजबूरसाहब की दो पंक्ति है-

मज़ाक जिंदगी में हो ये तो कोई बात है।
मज़ाक किसी की जिंदगी से हो वो दिल को नापसंद है।

हमारी मजाक किसी की जिंदगी के साथ न हो जाए।

कोई भूल कर ले थोडी; जिंदगी कितनी रफ्तार से जा रही है, इससे पहले हरि भज लो। सत्संग इसीलिए है। रामकथा कोई धर्मशाला नहीं है, रामकथा प्रयोगशाला है। आदमी भूल कर लेता है लेकिन 'तुम पापी हो!', 'तुम ये हो!' ऐसा ना कहना। क्या पापी? विनोबाजी एक बार जेल में प्रवचन करने गए तो उसने पहले ही कहा, 'तुम्हारे में और हमारे में कोई फ़र्क नहीं है। गुनहगार तुम भी हो, हम भी है। फ़र्क इतना कि तुम पकड़े गए हो, हम पकड़े नहीं गए हैं।'

करुणा एक एसी अवस्था है जो दीन पर भी होती है, संपन्न पर भी होती है। इसलिए तुलसी 'करुणानिधान' को वंदन करते हैं। वहां 'करुणानिधि' शब्द नहीं। कारण? 'जाके छूटे भव भेद ग्यान की।' ये भेद मिटे। यदि करुणा आए तो भेद मिटे। और ध्यान दे, शब्द 'छूटे।' ये संत की रचना है। मैं छोडूंगा तो मेरा 'मैं' बना रहेगा और फिर छोड़नेवाला 'मैं' फिर पकड़ भी लेगा। करुणा का स्वधर्म है भेद छूटे। हमारी आंखें भी भेद करती है। कभी-कभी रोओगे तो एक आंख से आंसू गिरेगा, एक आंख से नहीं गिरेगा।

भरत को जो पादुका दी गई वो अभेद अवस्था से परिपूर्ण करुणा से बनी है। वात्सल्य भी भेद करता है साबह! करुणारूपी पदार्थ का दूसरा कारण; करुणा महेनत से नहीं आती। खरीदी भी नहीं जाती। हां, किंमत चुकानी पड़ती है। जिसस की करुणा लो। करुणा को किंमत चुकानी पड़ी। महावीर स्वामी की करुणा लो। किंमत चुकानी पड़ी। शंकर की करुणा को किंमत चुकानी पड़ी। जलन मातरी की गुजराती गज़ल है-

पीधां जगतनां झेर ए शंकर बनी गयो।
कीधां दु:खो सहन ए पयंबर बनी गयो।

तो, मेरा मतलब कि करुणा को किंमत चुकानी पड़ती है। मेरा मतलब ये नहीं कि सत्य को किंमत नहीं चुकानी पड़ती। प्रेम को भी किंमत चुकानी पड़ती है। तो, करुणा जो है वो अभेद की सृष्टि करती है, अभेद से बनती है। और करुणा वो है जिसका मूल्य चुकाना पड़ता है। गुजराती में एक पद है-

संतने संतपणां मनवा!
नथी मफतमां मळतां.
नथी मफतमां मळतां,
एनां मूल चुकववा पडतां.

करुणानिधान पादुका बन गए तो ये करुणा कौन पदार्थ है? तीसरा कारण मेरी व्यासपीठ को लगता है, करुणा स्वभाव बनकर आती है किसी बुद्धपुरुष की कृपा से। अंगुलिमाल है, जेसल जाडेजा है लेकिन किसी बुद्धपुरुष की कृपा हो जाए; कृपा करुणा को जगा देती है। मुझे खुशी होती है कि लोगों की कठोरता आज चली गई है। जिस आदमी के सामने देख न पाउं ऐसे स्वभाववाले कोई गालियां दे तो आंख में आंसू ला देते हैं किसी बुद्धपुरुष की कृपा से। जैसे अंगुलिमाल के हृदय में करुणा फूटती है। करुणा का ये तीसरा कारण। समाजसुधारक के कारण कोई सुधर जाए लेकिन वो टेम्पररी होता है, कायमी नहीं होता। तो, करुणा इस तरह प्रगट होती है। और परमात्मा, स्वयं करुणानिधान पादुका बनते हैं इसलिए मैने ये दो पंक्तियां उठाई है।

तो, 'मानस-करुणानिधान'; मानी करुणा कौन पदार्थ है? जैसे नरसिंह महेता कहता है कि भूतल पर भक्ति एक पदार्थ है, वैसे 'मानस' उसकी खोज में है कि करुणा कौन पदार्थ है? उसके तीन सूत्र मैंने आपके सामने रखें। अभी चार बाकी है। कुल सात अंग मुझे समझ में आते हैं। उसकी चर्चा मैं आप के साथ कल करूंगा।

'रामचरित मानस' का जो कथाक्रम है उसमें आप जानते हैं कि हनुमानजी की वंदना के बाद अन्य सखाओं की वंदना की है। उसके बाद सीता-राम महाराज की वंदना के पश्चात् रामनाम महाराज की वंदना की। रामनाम ॐकाररूप है। भगवान शिवजी केवल 'रा' और 'म' दो अक्षर जो है, दोनों अक्षर मिलकर जो शब्दब्रह्म बना है वो बहुत आदि-अनादि है। और आदिकाल से नामसाधना पृथ्वी पर होती रही। गोस्वामीजी का जीवन आधार ही रामनाम था। इसलिए गोस्वामीजी ने जो अनुभव हुआ रामनाम के द्वारा वो हकीकत रखी है। गोस्वामीजी को तो करीब पांच सौ साल होने को है। महात्मा गांधी के जीवन में रामनाम का प्रताप हम सब जानते हैं। और आज भी कई महापुरुष अंदर से इस महामंत्र में डूबे रहते हैं।

ये कलियुग है। हम सब संसारी जीव है। निरंतर स्मरण हमारे बस की बात नहीं है। लेकिन जब समय मिले, जितना मिले; कोई इरादा नहीं कि रामनाम ही लो, प्रभु का कोई भी नाम लो। लेकिन ये मौसम नाम की मौसम है। हम जैसों के लिए नाम केवल एक आधार है। और ये मूल आधार है। आजकल जो 'आधारकार्ड' निकला है ना? मेरी दृष्टि में हरिनाम जीवन के आधार का कार्ड है। कैसे भी भाव, कुभाव, आलस, क्रोध में, फिर भी नाम लेंगे लोग; साहब, एक गाली किसी को दो तो गाली की कितनी असर होती है! लोग सर फोड़ने को तैयार हो जाते हैं! तो गाली की इतनी तुरंत असर होती है तो रामनाम की नही होगी? तो, प्रभु के नाम की महिमा में गोस्वामीजी वहां तक कह देते हैं कि परमात्मा अपने नाम की महिमा का गायन करे तो भी वो असमर्थ है। तुलसीजी कहते हैं-

कहौ कहाँ लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।

तो, रामनाम की वंदना की। उसके बाद 'रामचरित मानस'का अवतरण कैसे हुआ उसका हकीकती इतिहास पेश किया कि ये रामकथा सब से पहले शिव ने रची और अपने 'मानस' यानी हृदय में रखी। योग्य समय आया तब पार्वती को कथा सुनाई। वो ही रामकथा फिर कागभुशुंडिजी को मिली। उसने गरुड को सुनाई। फिर वो कथा धरती पर आई और परमविवेकी याज्ञवल्क्य के मुख से बाबा भरद्वाजजी ने सुनी। उसी श्रेणी में तुलसी जी कहते हैं, मैंने मेरे गुरु से ये कथा सुनी। लेकिन मेरे मन में बात ठीक से बैठी नहीं। कृपालु गुरु ने बार-बार सुनाया। और जब बात बैठी तब तुरंत निर्णय कर लिया कि मैं अब इस कथा को भाषाबद्ध करूंगा। और इरादा था कि मेरे मन को विशेष बोध प्राप्त हो।

एक रूपक बनाया। मानसरोवर के साथ उसकी तुलना की। चार घाट बनाये; ज्ञान का घाट, जहां शिवजी बैठकर पार्वती को कथा सुनाते हैं। उपासना का घाट, कागभुशुंडिजी बैठकर गरुडजी को कथा सुनाते हैं। कर्म का घाट, जहां याज्ञवल्क्यजी बैठकर भरद्वाजजी को और चौथा दीनता का घाट। तुलसी ने शरणागति से यात्रा का आरंभ किया। लोग पूछते हैं कि शरणागति आरंभ में होनी चाहिए कि अंत में? व्यवहारदृष्टि से तो आखिर में आदमी शरणागत होता है। लेकिन तुलसी ने कहा कि सही में तो शरणागति पहले होनी चाहिए। शरणागत व्यक्ति कर्म करेगा तो भी बहुत अच्छा करेगा। शरणागत व्यक्ति उपासना करेगा तो भी उसकी उपासना खुश्बूवाली होगी। शरणागत व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होगी तो भी उसका ज्ञान अभिमानशून्य होगा। मेरे व्यक्तिगत अभिप्राय में आदमी पहले किसी की शरण कबूल कर ले। तो, 'मानस' की यात्रा शरणागति से आरंभ होती है। फिर गोस्वामीजी हमें तीर्थराज प्रयाग लिए चलते हैं, जहां भरद्वाज और याज्ञवल्क्य के बीच में कथा का आरंभ होता है। आगे के प्रसंग की चर्चा हम कल करेंगे।

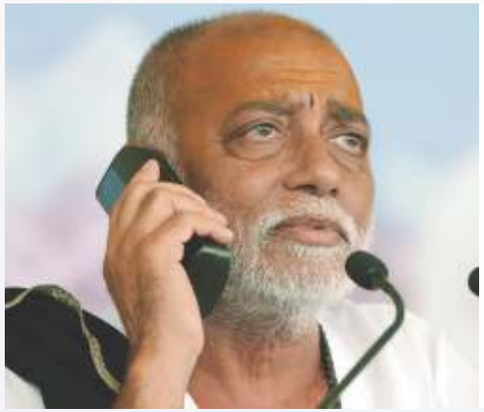

स्वीकार जिंदगी है, अस्वीकार मौत है

मानस-करुनानिधान : 3

'मानस-करुनानिधान' की हम कुछ 'मानस' के आधार पर संवादी चर्चा कर रहे हैं। कल आप से बात हो रही थी कि ये करुणा कौन पदारथ है? मैने आप से एक संदर्भ भी कहा था कि नरसिंह महेता कहता है कि इस पृथ्वी पर ये भक्ति-पदारथ क्या है? करुणा-पदारथ क्या है, वो तुलसी कहते हैं। और इस पूरे समुचे विश्व में सत्य कौन-सा पदार्थ है, ये मोरारिबापू कहता है। मैं मेरा नाम जोडूं इसीलिए कि मेरी जिम्मेवारी है इन पदारथ की। यहां 'पदारथ' शब्द युझ हो रहा है इसका मतलब कोई भौतिक पदार्थ नहीं। यद्यपि भक्ति को रसायण भी कहा है। करुणा भी रसायण है। सत्य भी रसायण है। पदारथ भी है। इतना ही कहकर मैं आगे बढूं कि सत्य हिमालय है। यद्यपि 'सत्य हिमालय है', ये कहना भी पूर्ण सत्य नहीं है। क्योंकि हिमालय कभी ना कभी मिटेगा। सत्य कभी मिटता नहीं। हमारे यहां कहा जाता है कि 'सूरज जेवुं सत्य', लेकिन सूर्य भी सत्य नहीं है। कभी न कभी वो भी विलीन हो जाएगा। मेरी व्यासपीठ ने कभी कहा है कि सूर्य भी एक बार समाप्त हो जाएगा; वो सत्य है। समझने के लिए कोई न कोई दृष्टांत आवश्यक है। तो, सत्य हिमालय है। प्रेम उसमें से बही गंगा है। आप सोचिए, प्रेम की भूमिका में यदि सत्य नहीं है तो प्रेम गंगा नहीं है, प्रेम गंदगी है। उसकी भूमिका में सत्य का हिमालय चाहिए। सत्य है हिमालय। प्रेम है हिमालय उद्भवागंगा। और करुणा है सागर।

बाप! कल तीन सूत्रों में आप से संवाद हुआ। एक तो करुणापदारथ समझने के लिए हम आपसे बात कर रहे थे कि एक तो बुद्धपुरुष की कृपा से करुणा समझ में आती है। करुणा का मूल्य चुकाना पड़ता है। थोड़ा आगे बढ़ें। करुणा योगी के हृदय की उपज है, भोगी के हृदय की उपज नहीं है। करुणा जब भी फूटी तो योगी के दिल से फूटी है। यहां तथाकथित योगियों की बात नहीं है। क्योंकि कभी-कभी योगी क्रोध करता है, श्राप देता है तो उसके योग से करुणा नहीं निकल पाती। 'करुनानिधान' शब्द राम के लिए प्रयुक्त हुआ है; तो वेदांत कहता है कि योगियों के हृदय में जो तत्त्व रम रहा है उसका नाम 'राम' है। तो रामतत्त्व योगियों के हृदय में रहता है, मतलब हो गया कि योगियों के हृदय में करुणा रहती है। भोगीओं के हृदय से जो उठती है वो करुणा नहीं है; एक उदासी, नीरसता होती है। भगवान शंकर को हम करुणावतार कहते हैं, क्योंकि वो योगेश्वर है।

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलहि परी हस्त असि रेख।।

तो, करूणारुपी पदारथ को समझने के लिए योगियों के हृदय को टटोलना होगा। और मुझे कहने में जरा भी आपत्ति नहीं कि हमारे हृदय में जब भी करुणा प्रगटे तो समझना, इतना समय हम योगी है। इसका अहंकार मत करना, अहोभाव व्यक्त करना। अहंकार से बात विलुप्त होती है। अहोभाव से बात पनपती है। तो, जो चौथा सूत्र है वो है, योगीहृदय की उपज करुणा है।

पांचवां सूत्र? शायद पहले भी बोला गया है। यद्यपि मैं नर्क और स्वर्ग में माननेवाला नहीं हूं। जो हो वो स्वीकार्य है; जो मिले वो स्वीकार्य है। और जो बात आप स्वीकार कर लोगे उसका कभी कष्ट नहीं होगा। स्वीकारने से आपको कष्ट नहीं होगा, आप धीरे-धीरे श्रेष्ठ होओगे। मैं मेरी निजी बात करूं। मेरी आंख में जब लेन्स लगाने की बात आई, उस समय ये नई-नई बात थी। मैंने सोचा कि ये लेन्स लगाउं और ये ठीक होगा कि नहीं? मैंने कबूल कर लिया और पहली बार में मैं सफल। ये बहुत छोटी-सी बात है लेकिन मुझे आपके सामने 'स्वीकार' शब्द रखना है। स्वीकार कर लो, कोई भी परिस्थिति हो। धंधे में घाटा जा रहा है? ईमानदारी से स्वीकार कर लो। बढ़ोतरी हो रही है? स्वीकार कर लो। अपमान हो रहा है? स्वीकार कर लो। स्वीकार आदमी को श्रेष्ठ बनाता है। फिर दांत की बात आई तो उस समय मेरी चिंता ये थी कि दांत रिप्लान्ट कराने से मेरी आवाज़ में कोई फ़र्क तो नहीं पड़ जाएगा ना? क्योंकि मुझे बोलना है, जी भरके बोलना है। लेकिन फिर मैंने गुरुकृपा से स्वीकार कर लिया कि कोई तकलीफ़ होनेवाली ही नहीं। मैं आपसे ये छोटे-से अनुभव की बात इसलिए करता हूं कि कोई भी बात हो, स्वीकार कर लो। स्वीकार जिंदगी है, अस्वीकार मौत है। नकारा तो गये! जिसको आज की भाषा में पोज़िटिव थिंकिंग और नेगेटिव थिंकिंग बोलते हैं। और जिसको इस राह में जाना है उसको तो हर बात स्वीकारनी ही होगी। भरत कैसे स्वीकार कर लेते हैं! गोपीजन कैसे स्वीकार कर लेते हैं! भरत कहते हैं-

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।
करुना सागर कीजिअ सोई।।

परमात्मा सब को निरामय रखे फिर भी बड़े से बड़े रोग को भी जो साधक स्वीकार लेगा तो कष्ट की मात्रा कम हो जाएगी। डोक्टर क्या इलाज करेगा? तुम्हारा स्वीकार ही तुम्हारा इलाज करेगा। कठिन तो है लेकिन स्वीकार बड़ी महत्त्व की बात है।

तो, नर्क-स्वर्ग खबर नहीं, जो हो हो! लेकिन मैं समझा हूं कि क्रोध नर्क है, करुणा स्वर्ग है। यदि बात-बात में आप क्रोध करते हैं तो आपको नर्क में जाने की क्या जरूरत है? कृष्ण ने क्रोध को 'नर्कस्य द्वार' कहा है। मेरे 'मानस' ने कहा है 'नाथ नरक पंथ कराई।' करुणा स्वर्ग है। कथा में क्या है? करुणानिधान की कृपा बरस रही है। इसलिए तो हम आनंद कर रहे हैं। तो, करुणा स्वर्ग है। इसीलिए करुणारूपी पदारथ योगियों के हृदय की उपज है। क्रोध नर्क है, करुणा स्वर्ग है।

आगे का सूत्र। करुणा घन पदार्थ नहीं है, करुणा प्रवाही है। ये प्रवाही है, ये द्रव्य है। बहते प्रवाह के कारण पादुका की बहती परंपरा आज भी अक्षुण्ण है। तो, ये घन नहीं है। हमारे पास अपने बुद्धपुरुष की यदि पादुका है तो उसको घन मत समझना। अतिशयोक्ति लगेगी, मैं तो मेरा अनुभव बोलूं। घर का गुजारा भी पादुका करती है। 'मानस' की एक पंक्ति को याद रखिएगा-

प्रणत कुटुंबपाल रघुराई।

ये विश्व परिवार का गुजारा कौन करता है? किसी करुणानिधान की चरणपीठ। ये है प्रवाह। तो, योगी के हृदय की उपज करुणा एक ऐसा पदारथ जो हमें बिलग पदार्थ का स्वर्ग का अनुभव कराता है। और करुणा है प्रवाह। एक ऐसा पदारथ जो एक जगह स्थिर नहीं है, बहता है।

सातवां और आखिरी सूत्र। बुद्धपुरुष की पादुका उसके तो पैर में होती है लेकिन करुणानिधान की पादुका होने के कारण वो हमारे सिर पर होती है। करुणा मतलब क्या? पैरों के नीचे करुणा को कूचलो मत। हम बार-बार किसी की करुणा का अपराध करते हैं! तुलसी तो ये बात शिरोधार्य रखने की बात करते हैं-

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।

कोई करुणानिधान की पादुका, कोई करुणानिधान बुद्धपुरुष की पादुका पांचों विषय को लिए हुए है। पांच विषय है-शब्द, रस, रूप, स्पर्श, गंध। पादुका पांचों विषय लिए हुए है। पादुका को हम स्पर्श करे वो स्थूल है। पादुका हम को स्पर्श करती है वो सूक्ष्म है। प्रतिपल जब पादुका हमें स्पर्श की महसूसी कराये तब समझना, ये करुणानिधान की पादुका है। तो, पादुका स्पर्श करती है। पादुका में शब्द है। हमने तो सुना नहीं लेकिन कहते हैं, समाधि बोलती है। लेकिन इस सत्य का मैं इन्कार भी नहीं कर सकता। समाधि बोलती है। इसलिए हमारे यहां 'श्रीमद् भागवत' के बारे में एक शब्द आया, 'भागवत' की भाषा 'समाधि भाषा' है। क्या मतलब? समाधियां बोलती है। जिसके पास श्रवणविज्ञान है वो दूर से भी उसकी आवाज़ को सुन लेते होंगे। समाधि बोलती है, वैसे पादुका के पास भी शब्द है। मुझे कहने दो, सुरीला शब्द है। पादुका गाती है, जिसका राग निश्चित करना मुश्किल है। इतना भरोसा मैं जरूर दे सकता हूं कि पादुकायें गाती है।

अमीर खुशरो का एक गुरु भाई था। दोनों निजामुद्दीन के प्रधान आश्रित। एक का नाम अमीर और दूसरे का नाम उमर। अमीर खुशरो बहु दूर रहा अपने बुद्धपुरुष से। लेकिन जो उमर था वो बिलकुल निकट रहता था। अमीर को तो एक बार पादुका की गंध मिली थी। लेकिन उमर जो था उसने निजामुद्दीन की पादुका से कव्वाली सुनी थी। ये आध्यात्मिक सत्य है। आदमी के शरीर में एक आध्यात्मिक बोडी होती है। हमारा ये जो बोडी है वो तो अग्नि, जल, आकाश, वायु, पृथ्वी से बनी है लेकिन हमारा आध्यात्मिक शरीर कौन पांच तत्त्वों से बनी है? यदि अनुभव करना है तो इन बातों को मान मत लेना; जरा सुनिएगा। जिस साधक ने अपने अंदर आध्यात्मिक शरीर प्राप्त कर लिया है; अपने अंदर एक जनम करना होता है। आध्यात्मिक शरीर अंदर पनपती है, अंदर ही रहती है। लेकिन उसके पांच तत्त्व भिन्न है। कहीं कोई भौतिक देह में आध्यात्मिक बोडी मिल जाए तो उसकी वाह-वाह मत करना। उसकी खुश्बू लेकर अहोभाव व्यक्त करना।

आध्यात्मिक शरीर का पहला तत्त्व है असंगता। जैसे आकाश असंग है। जो आदमी भरी बाज़ार में असंग है; जो आदमी भरे संसार में कुछ बिलग-सा है।

अच्छा भी बहुत है प्यारा भी बहुत है।
ये सच है कि तुने मुझे चाहा भी बहुत है।

अपने आप में, अपने भीतर, अपने आध्यात्मिक शरीर में असंगता का आसमां लेकर जो बुद्धपुरुष घूमे है, कभी नानक, कभी मीरां, तुलसी, सूर। जिसमें अंदर हम असंगता का अनुभव करे, समझना आध्यात्मिक शरीर का जन्म हो चुका है। जिसमें आकाश है असंगता का। पवन का एक अर्थ शब्दकोश में होता है, पवित्र करे सो पवन। जैसे हमारे कपड़ें पर रज पड़ी है और पवन आये तो ये रज उड़ जाती है। जिस व्यक्ति में हमें पवित्रता ज्यादा से ज्यादा भरपूर दिखे, समझना कि अध्यात्मिक बोडी अंदर प्रगट हो चुकी है। पवित्रता का वायु आध्यात्मिक बोडी का दूसरा तत्त्व है।

अग्नि है, जिस लक्ष्य को वो पाना चाहता है उस लक्ष्य का विरह। प्रेम को आग कहा है। शंकर की एक आंख सत्य है, एक आंख करुणा है और बीच की आंख है वो प्रेम है। 'वह्निनयनम्'; ये आग है। जिस को विरहाग्नि हम कहते हैं। शास्त्रों में प्रेमियों के लिए दस दशाओं का वर्णन है। पहली दशा का नाम है अभिलाषा। 'अस अभिलास निरंतर होई।' जिस परम को हमें पाना है उसकी अभिलाषा आरंभ है। दूसरी दशा का नाम है चिंता। जिसकी अभिलाषा उम्रभर करते रहे वो क्यों नहीं मिलता? वो प्रसिद्ध पंक्ति है-

दुनिया भी मिली है, गमे-दुनिया भी मिला है।
वो क्यों नहीं मिलता जो हमने मांगा था खुदा से।
सुनते हैं कि मिलती है हरेक चीज दुआ से,
एक रोज तुम्हें मांगकर देखेंगे खुदा से।

एक चिंता होती है। और गुरुकृपा से मुझे ये देखने में आता है तो मैं मजबूर हो जाता हूं कि 'रामचरित मानस' के राम में दसों दशाओं का वर्णन है। राम को अभिलाषा है कि सीता कब मिले। राम को एक मनुष्य के रूप में देखिए। और राम तक क्यों जाए? सब अपनी-अपनी दशा को देखें। जिसको पाने की अभिलाषा होती है, अभी पाया नहीं तो एक चिंता शुरू हो जाती है। फिर तीसरी दशा आती है स्मृति; उसकी याद। उसके बाद चौथी दशा का नाम है गुणकथन। जिसकी स्मृति आई उसके हम गुण गाने लगते हैं। 'हरि तुम बहुत अनुग्रह किन्हो।' ये चौथी दशा का नाम है। पांचवीं दशा का नाम है उद्वेग। जिसका गुणकथन हम रात-दिन करते हैं वो ठीक तो होंगे? एक उद्वेग शुरू हो जाता है। यार, कभी-कभी इस दशा में उसकी खबर सुनने की भी तैयारी नहीं होती कि कहीं कोई अमंगल खबर दे तो! छठ्ठी दशा का नाम है उन्माद। एक उन्माद, पागलपन! आगे की दशा का नाम है रोग। एक व्याधि, एक ज्वर जो चिकित्सा के ग्रंथों में स्थान नहीं पाया है।

क्या रोग लगा बैठे है।
दिल हम को लूंटा बैठा है,
हम दिल को लूंटा बैठे है।

फिर एक दशा का नाम है, जड़ता। आदमी स्तंभित रह जाता है! ऐसा स्तंभित हो जाता है कि परमतत्त्व उसको मिलने आए तो भी उसे लगता है कि क्या मैं देख रहा हूं! आखिरी दशा का नाम है मृत्यु। बीच में क्रंदन भी है। मैं आपसे ये कह रहा हूं कि जो आध्यात्मिक बोडी प्रगट होती है उसकी अग्नि है ये प्रेम। जिसकी अभिलाषा की वो मिला नहीं तो चिंता होने लगी। आध्यात्मिक बोडी का चौथा तत्त्व है क्षमा। आध्यात्मिक बोडी में क्षमारूपी पृथ्वीतत्त्व होता है। जिस व्यक्ति में आध्यात्मिक बोडी जनम ले चुका है उसमें क्षमा बहुत होती है। जिसस ने अपने शिष्यों को कहा था कि कोई सात बार गुना करे तो उसे माफ़ कर देना। शिष्य ने पूछा कि यदि वो ज्यादा बार गुना करे तो? तो कहे, सात सौ बार माफ़ करना। हमारे गुजराती में कहा है-

खूंदी रे खमे माता पृथ्वी,
वाढी रे खमे वनराय।
कठिन वचन मारा संत सहे।

और आध्यात्मिक शरीर का पांचवां और आखिरी तत्त्व है करुणा। ये जलतत्त्व करुणा है। इससे आध्यात्मिक बोडी बनती है। 'दुर्लभ है ऐसा दरवेश।' रमेश पारेख कहता है-

पांचीकाना होय, होय नहीं कदी संतना ढगला।
संत सहुने मुक्ति वहेंचे, नहीं वाघा, नहीं डगला।

तो बाप, ये करुणा कौन-सा पदारथ है? इनके कुछ जो सूत्र है वो मैं आपके सामने रख रहा हूं। तो, करुणा है द्रव्य, करुणा है जल। तो, ऐसे करुणानिधान की चरणपीठ पांचों विषयों से संयुक्त होती है। उमर ने सात

> जो बात आप स्वीकार कर लोगे उसका कभी कष्ट नहीं होगा। स्वीकारने से आपको कष्ट नहीं होगा, आप धीरे-धीरे श्रेष्ठ होओगे। स्वीकार कर लो, कोई भी परिस्थिति हो। धंधे में घाटा जा रहा है? ईमानदारी से स्वीकार कर लो। बढ़ोतरी हो रही है? स्वीकार कर लो। अपमान हो रहा है? स्वीकार कर लो। स्वीकार आदमी को श्रेष्ठ बनाता है। स्वीकार जिंदगी है, अस्वीकार मौत है। नकारा तो गये! जिसको आज की भाषा में पोज़िटिव थिंकिंग और नेगेटिव थिंकिंग बोलते हैं। और जिसको इस राह में जाना है उसको तो हर बात स्वीकारनी ही होगी।

मध्यरात्रि तक पादुका से गीत सुने। ये सत्य है, सत्य है, सत्य है। एक बात आपने सोची कि सत्य की रक्षा हमें करनी पड़ती है और सत्य हमारी रक्षा करता है! पांचों विषय होते हैं किसी करुणानिधान बुद्धपुरुष की पादुका में। गोस्वामीजी का अनुभव है।

सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।

पादुका का एक भौतिक रूप तो होता ही है। लेकिन उसका एक आंतरिक रूप भी होता है। आंतरिक रूप है पादुका का, नौका। ये जो आकार में है वो है नौका, नाव। गुरु की पादुका भव तैरने की नौका है। ये उसका आंतरिक रूप है। ये नाव है, ये मजबूत नौका है। तो, ये है उसका रूप। और पादुका का रस है, जो भी लो, पादुका के सामने आप ध्यान भी कर सकते हैं, ध्यानरस। पादुका को अंक में लेकर आप प्रीतिरस भी ले सकते हैं। और पादुका महारस में भी डूबो सकती है।

तो, पांचों विषय पादुका से संलग्न है। इसीलिए करुणानिधान के बारे में थोड़ा लंबा मंत्र हो जाएगा, लेकिन कभी सहज बोल जाये कि 'हे करुणानिधान...!' साहब, जवाब आएगा! राम की पादुका है राम का अवतार। और कृष्ण ने भेजी थी साडी द्रौपदी के लिए, वो साडी नहीं थी, वो कृष्ण का 'वस्त्रावतार' था। वो 'वस्त्रावतार' और ये 'पादुकावतार।' शर्त ये है कि ये करुणानिधान की पादुका होनी चाहिए।

चरनपीठ करुनानिधान के।
जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।।
एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आन की।।

तो, करुणा पदारथ का कुछ सूत्रात्मक संवाद आपने सामने रखा गया। मान मत लेना, अनुभव हो तब मानना। और गहरे अनुभव के बाद कभी भी इस मान्यता से विमुख मत होना। जो आपके सामने संवाद हुआ उसको मान मत लेना, महसूस करना। तीस साल पहले मैंने लाओत्सु का नाम भी नहीं सुना था लेकिन फिर जब लाओत्सु के सूत्र जो कुछ जाना, कुछ समझा उसे मेरे अनुभव के साथ मैं जब उसे जोड़ने लगता हूं तो मुझे बहुत आनंद आता है। अब मैं मान रहा हूं कि अनुभव के साथ बात बैठ रही है। सीधा मान लेने की जरूरत नहीं है। लाओत्सु स्मृति में आए हैं तो लाओत्सु का एक सूत्र है कि 'संत कायम उपर रहता है। लेकिन नीचेवालों को उसका बोझ नहीं लगता।' क्या साधु की परिभाषा की है! संत वो है जो कायम उपर है। मेरा नरसिंह महेता गाता है-

ऊंची मेडी ते मारा संतनी...

अब आप कहे कि कोई हमारे उपर हो तो उसका तो बोझ लगेगा। लेकिन संत उपर बैठे हैं फिर भी हमें बोझ क्यों नहीं लगता? मैं आप से एक प्रश्न पूछुं कि आकाश हमारे उपर है कि नहीं? आकाश हमारे उपर है फिर भी हमें बोझ नहीं लगता। क्यों नहीं लगता? क्योंकि उपर तो हमें दिखता है, आकाश हमारे नीचे है। तत्त्वत: आकाश नीचे है। साधु वो है जो बिलकुल हमारे नीचे रहता है, इसीलिए उंचा दिखाई देता है और इसीलिए उसकी उंचाई हमारा बोझ नहीं बनती। जो नीचे रहने को राजी है उसे पद से श्रेष्ठता नहीं मिलती, अपने आपसे श्रेष्ठता मिलती है। और फिर लाओत्सु कहता है कि संत के पीछे सब चलते हैं। चाहते नहीं है साधु कि उसका कोई अनुगमन करे लेकिन सब उसके पीछे चलते हैं। क्योंकि साधु से कोई द्वेष नहीं कर सकता। ये सब लाओत्सु के सूत्र है। और अब थोड़े शे'र मेरे पास है-

इकरारे मोहब्बत रहे वक्त की मौज नहीं।
कृष्ण चाहिए 'मजबूर' कृष्ण की फौज नहीं।

●

दिल के रिश्ते की नज़ाकत वो क्या जाने 'फ़राज़',
नर्म लब्जों से भी लग जाती है चौट अक्सर।

●

जब भी दिल खोलकर रोये होंगे।
लोग आराम से सोये होंगे।

और अब थोड़ा कथा का क्रम। इज़ाज़त हो तो एक बात पूछूं? प्रत्यक्षरूप में हमारे पास आज राम है? नहीं है; ठीक है? और मैं कहता हूं कि वो प्रत्यक्षरूप में नहीं है तो कोई चिंता नहीं, उसका नाम तो है। कलियुग में राम प्रगट नहीं है, नाम प्रगट है। राम नहीं है और जरूरत भी नहीं। यद्यपि राम कृपालु भी है लेकिन उसने भी कभी-कभी नकली क्रोध किया है, जैसे कि समुद्र के सामने। राम तो थोड़ा कोप भी करते हैं, लेकिन मैं वादा करता हूं, कलियुग में जो नाम प्रगट है वो केवल करुणा ही करता है, क्रोध नहीं करता। तो ज्यादा फायदा नाम में है। सवा भगत तो कहता है, 'नामवाळाने नहीं नडे।'

भगवान राम चौदह साल वन में रहे तो चार जगह उसने मुकाम किया। पहला मुकाम राम का है चित्रकूट। दूसरा पडाव ठाकुरजी का है पंचवटी। तीसरा पडाव है किष्किन्धा। कहीं कुछ साल रहे। कहीं कुछ मास रहे। कहीं कुछ दिन रहे। और चौथा पडाव है लंका। अब जो राम मौजुद थे तो इन चारों जगह राम के रहने की व्यवस्था किसने की? चित्रकूट में भगवान राम के रहने की व्यवस्था देवताओं ने की। अब ठाकोरजी पंचवटी आए तो कोई देव नहीं आया। लेकिन वहां भी गुरुकृपा से सोचने पर देवता थोड़ा न्यायी लगते हैं कि देवताओं को डर है कि वहां खर-दूषण की सेना है, वहां हम व्यवस्था करने जाएंगे तो बेमौत मारे जाएंगे! इसलिए भय के कारण नहीं आए। फिर लक्ष्मणजी वांस कापते है। जानकीजी घास की पूलियां लाती है और राघवेन्द्र नींव खोदते हैं। भगवान ऐसे आदमी नहीं बन सकता। ये मारग श्रमसाध्य है। अपने हाथों से कुटिया बनाई। फिर किष्किन्धा में प्रभु आए। सुग्रीव को राज्य मिल गया। वर्षाऋतु आ गई तो अब भगवान कहां रहे? सुग्रीव ने पूछा तक नहीं! लेकिन वहां देवताओं ने पहले से प्रवर्षन पर्वत में एक गूफा निर्मित कर दी थी। लंका में किसने व्यवस्था की? किसीने नहीं की। और ठाकुरजी सुबेल पहाड पर गए। वहां व्यवस्था की मेरे लक्ष्मणजी ने।

तो, भगवान राम जिस काल में प्रगट थे उस समय प्रगट राम के लिए इस प्रकार व्यवस्था हुई। मेरा तो अनुभव है इसलिए बोलता हूं कि राम प्रगट नहीं है लेकिन रामनाम के कारण हमारी व्यवस्था भी पहले देवता कर देते हैं। हरिनाम का आश्रय करोगे तो जहां तुम्हारा मन रम जाए ऐसी व्यवस्था में देवता सहाय करेंगे। लेकिन नामउपासक को सावधानी रहे कि कभी खुद की व्यवस्था खुद को भी करनी चाहिए। हमारी व्यवस्था करनी ही चाहिए ऐसा अधिकार जताना नहीं चाहिए। हरिनाम के उपासकों की व्यवस्था देवता करते हैं और परीक्षा परमात्मा करते हैं कि कभी तुझे तेरी व्यवस्था करनी पड़े तो प्रसन्न होकर कर लेना। फिर नाम उपासक के लिए प्रवर्षन पर्वत की तरह साधक की रुचि के अनुकूल व्यवस्था देवता करेंगे। रही बात लंका की। लंका की व्यवस्था लक्ष्मण करते हैं। लक्ष्मण रामानुज है, आचार्य है। आचार्य हम गुरु को कहते हैं। जब लंका जैसी विषम परिस्थिति में रहना पड़े तब नाम का आश्रय होगा तो तुम्हारा गुरु तुम्हारी व्यवस्था करेगा। ये लंका विषम परिस्थिति है। वहां कौन आवकार दे? 'मरीज़'साहब की एक गजल है-

पीठामां मारुं मान सतत हाजरीथी छे।
मस्जिदमां रोज जाउं तो कोण आवकार दे?
बस एटली समज मने परवरदिगार दे,
सुख ज्यारे ज्यां मळे त्यां बधांना विचार दे.

तो, लंका में राम का स्वागत कौन करे? विपरीत परिस्थिति है। लेकिन जिसके जीवन में नाम प्रगट होगा ऐसी विषम परिस्थिति में कोई रामानुज हमारी व्यवस्था कर देगा। और गुरु जब व्यवस्था करता है तो कितना खयाल करता है! लक्ष्मण को खबर है कि रामजी रसिक है। लक्ष्मणजी राम के योग और वियोग के साक्षी है। दोनों अवस्था में गुरु केन्द्र में है। यहां लंका में लक्ष्मणजी ने व्यवस्था की और सोचा कि रामजी वियोग में है तो क्या करूं लेकिन उनकी रुचि जानते हैं तो ऐसी चौटी पर व्यवस्था की कि चौटी के सामने मंच पर मनोरंजन कार्यक्रम चल रहा है। ये रामानुजाचार्य ने सोचा कि भगवान रसिक है तो थोड़ा कार्यक्रम एन्जोय करे। तो, गुरुकृपा कितना खयाल करती है! लेकिन रामनाम प्रगट हो तो। कहने का मेरा मतलब कि हरिनाम कलि में प्रगट है और जब नाम जिसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है तो परमात्मा सुविधा में क्या बाकी रखता है? मेरा तो कहना है कि नाम का आश्रय करें।

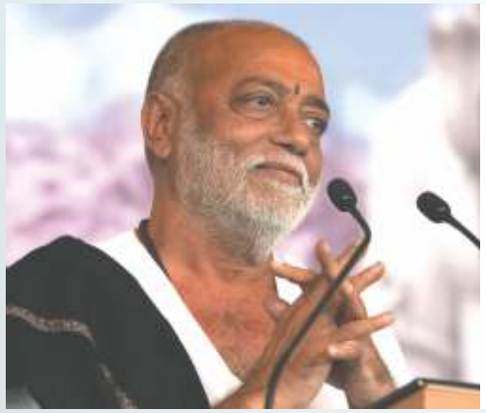

जो सद्गुरु हमारा सुमिरन करे वो करुणानिधान होगा

मानस-करुनानिधान : ४

'मानस' के आधार पर करुणानिधान की बहुत व्याख्याएं मिलती है। आज की कथा का आरंभ मेरी व्यासपीठ पांच अनुभूत व्याख्या से करना चाहती है। किसको करुणानिधान कहेंगे? गोस्वामीजी ने तो 'विनयपत्रिका' में यह भी कह दिया कि प्रभु का जो देहविग्रह है वो भी करुणा से ही बना है। हमारे शरीर में जैसे अस्थि-मज्जा-रक्त होता है, परमात्मा जब कोई देह धोरण करता है तब ये पांच भौतिक शरीर नहीं होता। प्रभु की मूर्ति करुणामय है। ईश्वर बना है करुणा से। करुणा ही उसका रूप और स्वरूप दोनों है। और करुणा के दो रंग बताये गये हैं। करुणा का एक रंग श्याम बताया गया है। और एक रंग उसका गौर बताया गया है। यद्यपि नव रसों की चर्चा जब चलती थी, कैलास गुरुकुल में, तब विद्वद्जनों ने इन रसों के रंग की व्याख्याएं की है कि किस रस का कौन रंग है? कौन उनका स्थायी भाव है? इनमें कहीं एक काव्यशास्त्रकार एक रस को ये भी बताते हैं, दूसरा रंग भी बताते हैं। कुछ रंग कोमन भी है। यहां बात बिलग है। मेरी व्यासपीठ कहना चाहती है कि करुणा के दो रंग है-एक श्याम, एक गौर। इसीलिए शायद भारतीय मनीषिओं ने परमात्मा विग्रह के रूप में हमारे सामने आता है तब उसके श्याम वर्ण का या तो गौर वर्ण का वर्णन किया है।

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम ।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ।।
मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरौ।।

करुणानिधान का वर्ण श्याम है।

कंदर्प अगणित अमित छबि, नवनीत-नीरद सुंदरं,
पट पीत मानहु तडित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं।

तो, एक तो हो गया कि करुणा का वर्ण श्याम है। ये शास्त्र है, ध्यान देना। और रंग क्या है उसमें भी ज्यादा उलझना मत। शास्त्र मार्गदर्शक बने तब तक ठीक है। यही शास्त्र आगे की यात्रा का मार्गबाधक नहीं बनना चाहिए। शास्त्र सिद्धांत देता है, संतोष नहीं देता। संतोष तो बुद्धपुरुष की अनुभूति देती है। इसीलिए शास्त्रों को सदा बुद्धपुरुषों

का अनुगमन करना पड़ता है। विज्ञान समता देता है, अध्यात्म संतोष देता है। विज्ञान की खोज अनंत होती है, होनी चाहिए लेकिन इसमें संतोष नहीं आएगा, समता आएगी। लेकिन अध्यात्म समता और संतोष दोनों देगा। मैं छोटे-छोटे बच्चों को, युवानों को निमंत्रित करूं कि आप जिस भाषा में पढ़ना चाहे, पढ़ो। तुलसीजी ने कितने वैज्ञानिक सूत्र दिये! जिनको लोग परंपरावादी कहते हैं, उसने तुलसी को जाना ही नहीं! तुलसीदास का बहुत बड़ा वैज्ञानिक सूत्र है-

बिनु विग्यान कि समता आवइ।
कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ।।

विज्ञान के बिना समता कभी नहीं आएगी। ये विज्ञान का उपयोग है कि मायक्रोफोन लगे हुए हैं। तो ये मायक्रोफोन आप बड़े हैं तो आप इसमें से ज्यादा सुनो और कुछ लोग है उसको कम सुनो ऐसा नहीं होगा। विज्ञान समता करेगा। एक पापी H_2O करके बैठ जाएगा तो उसको भी पानी ही मिलेगा और पुण्यात्मा H_2O करेगा तो पानी ही मिलेगा। विज्ञान समता देता है। इसलिए विज्ञान का स्वागत होना चाहिए। लेकिन वहां संतोष नहीं। विज्ञान कर्मयोग है, सतत योग नहीं है। सतत योग है संतोष। 'संतुष्ठः सततं योगी।'

तो, एक तो रंग है करुणा का सांवरा। सांवरा रंग बड़ा प्यारा है। उस पर से एक शब्द आया 'सांवरिया।' उस पर से एक गुजराती कवि ने गीत लिखा-

सांवरियो रे मारो सांवरियो.
हुं तो खोबो मागुं ने दई दे दरियो...

सांवरा रंग आकर्षण का गुण रखता है। यह हकीकत है। हम सब जानते हैं कि धूप के समय में काले कपड़ें का छाता ज्यादा गरमी देगा क्योंकि काला कपड़ा रिसिव बहुत करता है। सांवरा रंग करुणा का है। दूसरा रंग है गौर।

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारं।

शिव जब करुणानिधान के रूप में विग्रहधारी दिखते हैं। एक श्रोता का प्रश्न भी है कि 'बापू, शिवलिंग मानी क्या?' इसके बहुत अर्थ हो सकते हैं। शिवलिंग शून्य का प्रतीक है। बिलकुल गोल भले न हो, शिवलिंग शून्य का प्रतीक है। और समझे तो शून्य पूर्ण का प्रतीक है। ये शून्य है इसीलिए पूर्ण है। ये शून्य न होता और नव अंक में से कोई एक अंक होता तो कतई पूर्ण नहीं होता। शिवलिंग शून्य पूर्ण परमात्मा का प्रतीक है। फिर मैं मेरी बात पर आ जाऊं, परमात्मा सत्य का प्रतीक है। परमात्मा प्रेम का प्रतीक है। परमात्मा करुणा का प्रतीक है। शिवलिंग पूर्णता है क्योंकि शून्य है।

तो, शिव गौर है। करुणा का एक रंग हो गया गौर। एक हो गया श्याम। परमात्मा जब विग्रह धारण करता है तो रूप उसका करुणा से बनता है। और हमको भी मनुष्य बना देते हैं तब भी तुलसीदासजी कहते हैं कि-

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही।

तो, इस 'करुनानिधान' शब्दब्रह्म को महसूस करने के लिए 'मानस' अंतर्गत कुछ परिभाषाएं। किस को कहेंगे करुणानिधान? एक; हम उसका स्मरण न करे तो भी जो हमारा स्मरण करे उसको करुणानिधान कहते हैं। 'सुमिरन मेरा हरि करे।' कई अनुभूत महात्माओं का ये अनुभव है कि अब मैं सुमिरन नहीं करता, परमात्मा मेरा सुमिरन करता है क्योंकि ये करुणानिधान है। और 'सुमिरन' शब्द आया तो एक और बात बीच में डालूं कि आप जप करते हैं तो एक वस्तु समझना कि जप साधन है, सुमिरन साध्य है। जप की बड़ी महिमा है, लेकिन है साधन। हम क्या परमात्मा को याद करे? वो करुणानिधान है इसीलिए हमें याद करते हैं और उसकी याद के कारण फिर हम जाग जाते हैं। हमारी स्मृति लौट

आती है। जो बुद्धपुरुष, जो सद्गुरु हमारी याद करे, हमारा सुमिरन करे तो समझ लेना, वो करुणानिधान होगा ही। और ये सत्य है। परमात्मा हमें याद करता है। ब्रज बिसरता नहीं है। भगवान कृष्ण कहते हैं। भगवान कृष्ण परमात्मा है लेकिन एक मानव के रूप में लो तो भी इतना श्रेष्ठ महामानव है कि जाहिर में रोना भी मुश्किल है। इसीलिए एकांत खोजते हैं कि कोई आंसू देख न ले। और एकमात्र आंसू का कारण है कि ब्रज का सुमिरन। वो नंद! वो यशोदा! वो राधिका! 'भगवद्गीता' में कृष्ण ने निष्काम कर्म की बात की है लेकिन 'भागवत' में शुकदेव ने निष्काम काम की चर्चा की है। कामदेव और कृष्ण का द्वंद्वयुद्ध शुरू हुआ था रासलीला में। कौन किसको जीते? निष्काम काम। काम तो था लेकिन निष्काम। चेष्टायें तो थी लेकिन निष्काम काम की चर्चा 'श्रीमद् भागवत' ने की। एक योगीराज ने की, जो अलक्षलिंग है, जो शिव का अवतार माना गया है वो शुकाचार्य। ऐसे ही निष्काम काम की चर्चा जनक की पुष्पवाटिका में। जनक की पुष्पवाटिका 'रासपंचाध्यायी' नहीं है तो है क्या? ये सूत्रात्मक 'राचपंचाध्यायी' है। जहां किशोरीजी और सांवरा कुंवर मिलते हैं। पुष्पवाटिका संक्षिप्त 'रासपंचाध्यायी' है। मैं जिम्मेवारी के साथ बोल रहा हूं कि सूत्रात्मक रासपंचाध्यायी है।

तो, भगवान स्वयं कबूल करते हैं कि मैं ब्रज का स्मरण करता हूं। और हम जब भी स्वप्न में जाग जाए और कृष्ण की स्मृति आए तो समझना नंदनंदन ने हमारा सुमिरन किया है; वर्ना हम बेहोश लोग ख्वाबों में जिंदगी खतम करनेवाले! ख्वाबों में जीए जा रहे हैं! और सबसे बड़ा ख्वाब ये है साहब कि संनिकट जो है वो सच नहीं लगता और दूर का स्वप्न सच्चा हो नहीं सकता। मैं एक आर्टिकल पढ़ रहा था। उसमें लिखा था कि लंडन का जो टावर है, उसमें एक सर्वे किया गया कि लंडन के कितने नागरिकों ने इस टावर को देखा? तो, जो सर्वे किया गया उसमें आया कि जो टावर है उसे लंडनवासीओं में से दस लाख लोगों ने नहीं देखा था! दुनिया के लोग वो देखने जाते हैं और वहां मूलक के दस लाख लोग उसे देखते नहीं! और सर्वे में जब नागरिकों को पूछा गया कि आपने इस टावर को क्यों नहीं देखा? कहा कि 'निकट है, कभी न कभी देख लेंगे, जल्दी भी क्या है?' महापुरुषों के बारे में ऐसा ही हुआ है! संनिकट सच नहीं लगता और दूर के ख्वाब सच्चे नहीं होते! कितना चूके जा रहे हैं हम! पांच हजार साल कोई बड़ी लंबी अवधि नहीं है कालगणना में। हाथ फैलाओ तो कृष्ण पकड़ा जाए इतना निकट है लेकिन चूके जा रहे हैं! प्रभु की स्मृति आ जाए तो समझना, हमने नहीं स्मरण किया है, ये करुणानिधान की प्रकृति है। 'गीतावली'में लिखा है-

सत्य बचन सुनु मातु जानकी!
जनके दुख रघुनाथ दुखित अति,
सहज प्रकृति करुनानिधान की।।

मेरे करुणानिधान की ये प्रकृति है कि उनके आश्रित को दु:खी देखकर उनसे कई गुना दु:खी हो जाते हैं। ये उनका स्वभाव है। अब करुणानिधान के लक्षण।

कबहुँ समय सुधि द्यायबी, मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं,
किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पानकी।।
सरल कहाई प्रकृति आपु जानिए करुना-निधान की।

आपका इतना सारल्य है कि ये आपका स्वभाव है। लेकिन हम प्रभाव को जाननेवाले लोग है! स्वभाव तो कोई भुशुंडि जानता है। अपने जन को दु:खी देखकर अति दु:खी बनना रघुनाथ की प्रकृति है।

मेरे भाई-बहन, एक अनुभूत परिभाषा है कि करुणानिधान होने कारण वो हमें स्मृति में रखता है। दूसरा अनुभूत लक्षण करुणानिधान का वो है कि हम उनकी प्रतीक्षा न करे तो भी वो हमारी प्रतीक्षा करता है कि रास्ता चुक गया लेकिन कभी न कभी लौटेगा। वो प्रतीक्षा करता है। ये करुणानिधान के अलावा नहीं हो सकता। वो हमारी राह देखे। 'मानस' में तो आता है, भरतजी कहते हैं, अभी क्यों नहीं आये? अवधि पूरी होने को है, नाथ नहीं आए। लेकिन यहां हनुमानजी नहीं आये औषधि लेकर समय पर तो भगवान उसकी प्रतीक्षा में है। याद रखना, इसको केवल भाई की चिंता नहीं थी। उसको अपने प्रिय हनुमानजी की भी चिंता है। सीता की प्रतीक्षा भी करते हैं। 'मानस' के आधार पर करुणानिधान की ये दूसरी परिभाषा हो जाती है कि हम उसकी प्रतीक्षा न भी करे, वो हमारी प्रतीक्षा करता है कि कभी न कभी आएगा।

तीसरा लक्षण। वो बुद्धपुरुष करुणानिधान है, जो केवल देना ही जानता है, लेना जानता ही नहीं। देना, खुद को भी दे देता है। और वहां तक कह देते हैं कि मेरे पास मेरे आश्रित के लिए अदेय कोई चीज है ही नहीं। केवल देता है। और ठीक से समझे तो, हम जैसे संसारी लोगों को दाता ने कितना दिया है! पृथ्वी पर मनुष्य अवतार दिया है। परमदानी है ये क्योंकि करुणानिधान है ये। आगे बढ़ें? करुणानिधान का चौथा सूत्र; तत्त्वत: वो पूर्ण है फिर भी वो कहता है कि तेरे बिना मैं अधूरा हूं। ये करुणानिधान के बिना कोई नहीं बोल सकता -

पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

'बिना राधे श्याम आधे।' राधा नहीं तो कृष्ण को लगता है कि मैं अधूरा हूं। जीव उसको अच्छा लगता है।

सब मम प्रिय सब मम उपजाए।
सब ते अधिक मनुज मोहि भाए।।

आप 'मानस' में देखिए, कई लोग परमात्मा को प्रिय है। कई लोग भगवान को अतिप्रिय है। कई लोग भगवान को अतिशय प्रिय है। करुणानिधान को अतिशय प्रिय कौन है?

सो प्रिय जाके गति न आन की।

इसमें सार्वभौम है कि कोई भी जिसको मेरे सिवा कोई गति नहीं वो मुझे प्रिय है। लेकिन प्रेम का मीठा पक्षपात करते हैं; विमान से सब को बता रहे हैं कि -

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी।

मेरी अयोध्या के लोग मुझे अति प्रिय है। और सीता के लिए?

अतिसय प्रिय करुनानिधान की।

वो अतिशय प्रिय है। और हद है कि एक ओर सीता करुणानिधान की अतिशय प्रिय; दूसरी एक भीलनी शबरी, 'सोई अतिसय प्रिय भामिनि मोरें।' शबरी को कहा कि तुम मुझे अतिशय प्रिय हो। तथाकथित कुछ तार्किक लोगों ने तुलसी के 'भामिनी' शब्द का गलत अर्थ किया है। मैं एक प्रार्थना करूं कि जहां तक संभव हो, बुद्धपुरुष के अपराध से बचिए। वो तो क्षमा कर ही देगा क्योंकि वो क्षमामूर्ति है, अस्तित्व माफ़ नहीं करता।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ।
निज अपराध रिसाहिं न काऊ।।
जो अपराधु भगत कर करई।
राम रोष पावक सो जरई।।

लेकिन अस्तित्व क्षमा नहीं करेगा। एक नियम है। तार्किक लोगों ने 'भामिनी' शब्द का गलत अर्थ किया है! और 'भामिनी' शब्द सदैव युवान स्त्री के लिए यूज़ किया जाता है। हां, मेरी शबरी युवान है, युवान होनी चाहिए। क्योंकि शबरी भक्तिस्वरूपा है। और-

सकल प्रकार भगति दृढ तोरें।।

भक्ति कायम युवान होती है। ज्ञान-वैराग्य बूढ़ा होता है। और ठाकुर तीन बार 'भामिनी' शब्द युझ करते हैं, त्रिसत्य करते हैं-

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।

तो, सीता को ये सन्मान प्राप्त है कि 'अतिसय प्रिय करुनानिधान की।' और यहां शबरी भी 'अतिसय

प्रिय' है, क्योंकि भक्तिस्वरूपा है। भक्ति नवयौवना है। तो, करुणानिधान वो है जो तत्त्वत: पूर्ण होते भी कहता है, जीव के बिना मैं अधूरा हूं। रोते हैं कि ये न हो तो मैं कुछ नहीं हूं। मेरा भाई लक्ष्मण न रहे तो मेरी कोई किंमत नहीं। लक्ष्मण मूर्छित होता है तब कहते हैं कि मुझे पहले से पता होता तो मैं सीता की बातें नहीं मानता। हनुमान के बिना राम अधूरा। सीता के बिना राम अधूरा। पूर्णब्रह्म को अपूर्ण के बिना तसल्ली नहीं होती।

करुणानिधान का ये लक्षण है कि खुद को ही खबर नहीं कि मुझ में करुणा कितनी है? पता हीं नहीं खुद को कि मुझमें करुणा कितनी है? 'निधान' का अर्थ है भंडार। लेकिन कई लोगों के पास इतना भंडार होता है कि उसको खबर नहीं कि मेरे भंडार में क्या है? समुद्र का तो मंथन किया और फिर मंथन रुक गया इसलिए चौदह ही रत्न निकले, बाकी मंथन चालू रहता तो समुद्र को भी पता नहीं कि मुझमें कितने रत्न है! पृथ्वी को पता नहीं कि मुझमें बीज कितने हैं? आकाश को पता नहीं कि मुझमें सितारें कितने हैं? ये तो हमने गिने है! गंगा को पता नहीं कि मुझमें पवित्रता कितनी है? व्यासपीठ को पता नहीं है कि उसकी विशालता कितनी है? और कैलास को पता नहीं कि उसकी ऊँचाई कितनी है? सूर्य को पता नहीं कि मुझमें कितनी ऊर्जा है? ऐसे ही करुणानिधान को पता नहीं कि मुझ में करुणा कितनी है? और स्पर्धा छोड़कर आश्रित हो जाए तो हम गिन न पाए इतनी करुणा होने लगती है। इसीलिए उस तत्त्व को प्रणाम करो।

बंदौ रघुपति करुना निधान।
जाते छूटै भव-भेद-ग्यान।।

रफ़ीसाहब ने ये पद गाया है। संगीत बिनसांप्रदायिक होता है। पद है राम का और गा रहे है रहीम! मुझे कल वसीम बरेलवीसाहब बोल रहे थे कि ये जो हिंदुस्तान और पाकिस्तान का संघर्ष है वो बिना रुहानियत मिट ही नहीं सकता। ये सत्तावालें तो तोड़ते जाएंगे! काम विरोधपक्ष से नहीं होता, बोधपक्ष से ही होता है। लोकतंत्र केवल विरोधपक्ष रखता है। विरोध ही करना! हम छोटे क्यों होते जा रहे हैं? जरा बोधपक्ष तो रखो! मुझे राजनीति से प्रामाणिक डिस्टन्स है। मैं किसी की सिफ़ारिश नहीं करता। एक भारत के नागरिक के रूप में बोल रहा हूं। लेकिन हम सत्य तो समझें। मैं किसी का बचाव नहीं करता, लेकिन सब को निवेदन करना हो तो जिम्मेवारी के साथ करना चाहिए।

बात चल रही थी कि करुणानिधान वो है कि खुद को पता नहीं कि मुझ में करुणा कितनी है! आप की तिजोरी में एक लाख रूपया है तो आप को पता है कि एक लाख है। तिजोरी को पता है? संसार की जो आध्यात्मिक तिजोरियां है उसको पता नहीं कि मुझमें करुणा कितनी है!

ओ करुणाना करनारा,
तारी करुणानो कोई पार नथी.

तो, करुणानिधान के कुछ लक्षण। ये पद ही सीधा करुणानिधान का परिचय है।

बंदौ रघुपति करुना-निधान।
जात छूटै भव-भेद-ग्यान।।
रघुबंस-कुमुद-सुखप्रद निसेस।
सेवत पद-पंकज अज महेस।।

'अति प्रबल मोह-तम मारतंड।' कौन करुणानिधान हे? अत्यंत प्रबल जो जीता न जाए, ऐसे मोह के अंधेरे में हे करुणानिधान, तू मार्तंड, सूर्य है। 'अग्यान-गहन-पावक-प्रचंड।' कौन है करुणानिधान? अज्ञान को नष्ट करने में प्रचंड पावक है।

भव-जलधि-पोत चरनारविंद।
जानकी-रवन आनंद कंद।।

संसाररूपी सागर में जिसके चरणारविंद पोत है, नौका है। 'हनुमंत-प्रेम-बापी-मराल।' हनुमानजी के हृदयरूपी सरोवर में हे करुणानिधान, तू हंस की तरह तैरता है।

कुछ जिज्ञासा। 'बापू, मोक्ष और स्वर्ग में क्या फ़र्क है?' ये मत पूछो मुझे! क्योंकि न मैं स्वर्गवादी हूं, न मैं मोक्षवादी हूं। क्या है मोक्ष, मुझे खबर नहीं! क्या है स्वर्ग, मुझे खबर नहीं! किसी महापुरुष से पूछिए।

'साधना गृहस्थ में रहकर भी की जा सकती है क्या?' बिलकुल। यही तो कसौटी है। त्यागी बनकर कोई साधना करे तो विशेष घटना नहीं है, गृहस्थ में रहकर साधना करे। हम गृहस्थ है और कोई अतिथि आए और उन्हें देखकर हमें लगे कि हमारे घर अतिथि आया, तो समझना, ये साधना है। गृहस्थ में रहकर ही साधना की महिमा है।

'ब्रह्म क्या है? और उसे कैसे जाना जाता है?' ब्रह्म तुम हो। 'तत्त्वमसि'-उपनिषद। और सबसे कठिन यही है कि खुद को जानना। सब ब्रह्म है। 'पितृपक्ष में ब्राह्मणभोजन करवाने से पितृ के आत्मा को शांति मिलती है?' ब्राह्मण मानी निर्दोष चित्त। एक बच्चा निर्दोष चित्त है, किसी के घर पैदा हुआ, ब्राह्मण है। मेरा एक आग्रह है मेरे श्रोता भाई-बहन कि कथा द्वेषमुक्त चित्त से सुनना। किसी को भी द्वेषयुक्त चित्त से सुनना ही मत। द्वेष मन में रखकर सुना तो गए! मयखाने में लोग शराब पीते हैं तो जाम लेकर शराब पीनेवाले फिर जाम फैंक देते हैं। सागर होता है वो ऐसे ही पड़े रहते है। कई लोग ऐसे ही पड़े रहते हैं; बाकी पीनेवाले तो पहुंच जाते हैं। लेकिन ये शराब वो कडवीवाली नहीं, मधुर शराब है।

जिन्दगी शम्मा की मानिंद जलाता हूं 'नदीम',
बुझ तो जाऊंगा लेकिन सवेरा करके जाऊंगा।

बुझ तो जाऊंगा, अवश्य! लेकिन सुबह करके जाऊंगा। ये निर्दोष चित्त का वक्तव्य है। पितृतर्पण के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। गौ को ग्रास दो, गाय को प्रेम करो तो पितृ तर्पण होगा कि नहीं, खबर नहीं लेकिन गाय जरूर खुश होगी। किसी को तृप्त करो, गायों को प्रेम करो और निर्दोष चित्त को रोटी खिलाओ तो पितृ राजी होंगे ही। विधिविधान के बारे में मेरा कोई रस नहीं है। मैं स्पष्ट हूं। इमरोझ की चार पंक्ति-

घडी अक्सर बदलती रहती है,
कभी मेरे हाथ पर कभी उसके हाथ पर।
पर वक्त कभी नहीं बदलता,
वो मेरा वक्त है और मैं उसका वक्त हूं।

करुणानिधान का ये लक्षण है कि खुद को ही खबर नहीं कि मुझ में करुणा कितनी है? पृथ्वी को पता नहीं कि मुझमें बीज कितने हैं? आकाश को पता नहीं कि मुझमें सितारें कितने हैं? ये तो हमने गिने है! गंगा को पता नहीं कि मुझमें पवित्रता कितनी है? व्यासपीठ को पता नहीं है कि उसकी विशालता कितनी है? और कैलास को पता नहीं कि उसकी ऊँचाई कितनी है? सूर्य को पता नहीं कि मुझमें कितनी ऊर्जा है? ऐसे ही करुणानिधान को पता नहीं कि मुझ में करुणा कितनी है? और स्पर्धा छोड़कर आश्रित हो जाए तो हम गिन न पाए इतनी करुणा होने लगती है।

अब थोड़ा कथा का क्रम। रामनाम की वंदना हुई। फिर सीता-राम की वंदना होती है। फिर 'रामचरित मानस' का पूरा चार घाट। फिर भरद्वाजऋषि के कर्मघाट में कथा गई। इसी क्रम में याज्ञवल्क्य महाराज भरद्वाजजी महाराज को शिवचरित्र सुना देते हैं। शिव और सती कुंभजऋषि के आश्रम में कथा सुनने के लिए गए। कुंभज ने जगत के माता-पिता समझके दोनों की पूजा की और फिर सती ने गलत अर्थ कर दिया कि इस आदमी से क्या कथा सुने जो अभी से हमारी पूजा करने लगा! कोई आदर दे तो अपनी लायकात मत समझना, उनकी उदारता समझना। शिवजी ने तो अच्छा अर्थ निकाला लेकिन सती ने गलत अर्थ निकाला। फिर दोनों दंडकारण्य से गुजरते हुए जाते हैं कैलास की ओर। त्रेतायुग चल रहा था। रामकाल वर्तमान था। सीता का अपहरण हो चुका था। राम ललित नरलीला कर रहे हैं। उसी दृश्य को शंकर भगवान देख लेते हैं और 'सच्चिदानंद' कहकर दूर से प्रणाम किया। सती के मन में संदेह प्रगट हुआ। बार-बार शिवजी ने समझाया फिर भगवान शंकर हंस पड़े कि परमात्मा की माया प्रबल है! सती बुद्धिप्रधान होने कारण राम की परीक्षा करने को तैयार हो जाती है। फिर तो राम ही राम को देखकर पछताती है! शंकर के पास जाकर झुठ बोलती है। भगवान शंकर उसका त्याग करते हैं। सत्तासी हजार साल बीत गए सती का दूसरा जन्म हिमालय की पुत्री के रूप में। मेरी मान्यता में बुद्धि जल गई और श्रद्धा प्रगट हो गई। माता-पिता बहुत प्रसन्न। पुत्री का जन्म हुआ। उत्सव मनाया गया। वृद्धि बढ़ने लगी। कन्या घर में होती है तो सात-सात विभूतियां अपने आप आ जाती है। एक बार नारदजी आ गए। नामकरण संस्कार किया। पति के बारे में भी भविष्यवाणी नारदजी करते हैं। एक बात नारद ने कह दी कि तुम्हारी बेटी तपस्या करे तो शंकर भगवान मिले। तप का मारग लिया पार्वती ने। पार्वती की तपस्या पूरी हुई। दूसरी और भगवान शंकर के पास भगवान प्रगट होते हैं और शंकर से मांग लेते हैं कि आप शैलराज की पुत्री का पाणिग्रहण करिएगा। भगवान की आज्ञा को शिवजी ने शिरोधार्य की। भगवान शंकर नंदी पर बैठकर ब्याह के लिए हिमाचलप्रदेश गति करते हैं। महाराणी मैना बेहोश हो गई! भगवान शंकर और पार्वती के सच्चे स्वरूप के बारे में नारदजी महाराणी मैना और सभी को समझाते हैं तब सब शिव और पार्वती प्रति सद्भाव प्रगट करते हैं। महादेव पाणिग्रहण करते हैं। हिमालय और महाराणी मैना अपनी बेटी को बिदा देते हैं। और फिर भगवान शंकर पार्वतीसंग पहुंचते है कैलास। समयमर्यादा पूरी हुई और कार्तिकेय का जन्म हुआ। पुरुषार्थ के प्रतीक कार्तिकेय ने ताडकासुर को निर्वाण दिया।

शिव एक बार वेदविदित कैलास के वटवृक्ष नीचे विराजित है सहजासन में। और पार्वती योग्य अवसर देखकर शरणागत हुई है। अपनी प्रिया को वामभाग में आसन दिया। यहां शंकर का जो वर्णन है उसमें नवो रस है। शांतरस तक का वर्णन है-

बैठे सोह कामरिपु कैसे।
धरें सरीरु सांतरसु जैसें।।

ये जो रस की चर्चा संस्कृतसत्र में चलती थी तो एक विद्वान प्रोफेसर ने मुझे चिठ्ठी लिखी थी कि बापू, आप को कौन-सा रस पसंद है? मेरा पसंदगी का रस शांत रस है। क्योंकि शांत रस से ही सभी रस प्रगट होते हैं और सभी रसों का समापन भी शांत रस में होता है। शांत रस तो नव रस में आ गया लेकिन तुलसी एक रस एड करते हैं, वो है 'ध्यानरस।' तो, पार्वती जिज्ञासा करती है और रामकथा सुनाने को कहती है। भगवान शंकर धन्यवाद देते हैं पार्वती को। फिर ब्रह्मतत्त्व क्या है उसका थोड़ा औपनिषदीय वर्णन करते हैं और फिर रामकथा का गायन करने के लिए प्रस्तुत होते हैं। उसकी चर्चा हम कल करेंगे।

करुणानिधान कभी कठोर नहीं बन सकता

मानस-करुनानिधान : ५

बहुत-सी प्यारी जिज्ञासाएं भी है। उसको भी मैं लूंगा। लेकिन एक सूत्र आज मुझे मिला, प्यारा लगा, सो कह दूं, 'साधु जवाब नहीं देता, साधु जाग्रत करता है।' क्यों ना आज वहीं से शुरू करें? साधु वो है; 'साधु' की जगह मैं 'करुणानिधान' शब्द यूज़ करूं तो आप को तकलीफ़ नहीं होनी चाहिए। करुणानिधान वो है जो जवाब नहीं देता। आप अंधेरे के बारे में पूछे और करुणानिधान उसकी व्याख्या नहीं करेगा; कोई शास्त्रीय जवाब नहीं देगा। वो एक छोटा-सा चराग जला देता है। वहां अपना स्वधर्म पूरा हो जाता है। ये चराग जलाने की बात ही रामकथा है।

चरागे-हुस्न जलाओ बहुत अंधेरा है।
नकाब रुख से हटाओ बहुत अंधेरा है।

'हुस्न' शब्द से मुझे आपत्ति नहीं है। 'हुस्न' मानी परम सौंदर्य। तेरा सौंदर्य नकाबों में परदानशीं है। और कुछ नहीं करना है, केवल ये पर्दे को हटा दिया जाए।

घूंघट के पट खोल,
तोहे पिया मिलेगा।

तो, साधु अंधेरे पर भाषण नहीं देगा। वो चराग जला देगा। बड़ा प्यारा सूत्र है कि साधु जवाब नहीं देता, जाग्रत कर देता है। और मुझे नहीं लगता कि कोई इसका इन्कार कर सके। और व्यासपीठ से भी मैं कहूं कि मैं इसका उत्तर दूं, तो जितना उत्तर मैं दूंगा, उत्तरों से कोई काम होनेवाला नहीं।

हर प्रश्न के उत्तर में नए प्रश्न प्रगट होते हैं। प्रश्नोत्तरी बुद्धिविलास है। ये हृदय का नर्तन नहीं है। और सब सवाल जवाब देने के योग्य भी नहीं होते। जरूरी लगता है तो फिर मैं बोल लेता हूं द्वेषमुक्त चित्त से, आपकी कृपा से। और मैं पहले से ही ब्लेसिड हूं। ये मैं ओलरेडी ब्लेसिड हूं, बाय माय सद्गुरु भगवान। मैं कुंभ में गया, नासिक। तो सब जानते हैं कि मैं हरेक के आश्रम में जाऊं, महात्माओं को मिलूं। मुझे खबर है कि मेरा गैरफायदा लिया जा रहा है! दूसरी ही क्षण क्लिपिंग चली जाती है पूरी दुनिया में कि बापू हमारे आशीर्वाद लेने आये! अब मैं उसे कैसे समजाऊं कि मैं ओलरेडी ब्लेसिड हूं! और ये मेरा अहंकार नहीं है, प्लीज़। ये मेरा अहंकार नहीं है और वो मेरी खोखली नम्रता भी नहीं है। मुझे

बोलने दो, ये मेरा अभिमान भी नहीं, ये मेरा स्वाभिमान भी नहीं, ये मेरा स्वभाव है। लोग कहते हैं ना कि स्वाभिमानी होना चाहिए। स्वाभिमानी भी नहीं होना चाहिए, केवल स्वभाव हो। लेकिन मेरे बारे में तो ऐसा बहुत होता है! मैं राजी होता हूं! कई आश्रमों में जाऊं तो आनंद आता है। बस एक आनंद, ओर कोई कारण नहीं है। लेकिन उसके शिष्य शुरू कर देते हैं कि 'बापू हमारे गुरु के आशीर्वाद लेने आये थे और पंद्रह साल पहले आये थे तब से उनका बहुत चला!' अरे यार! मेरा जनम-जनम से चल रहा है। लेकिन ऐसा बहुत होता है! और ये मेरा मनोरंजन है। मैं गांधीजी के बारे में बोलता हूं। गांधी मुझे बहुत प्रिय है। उनकी सत्यनिष्ठा मुझे झुका देती है। लेकिन कुछ गांधीवादी ऐसा भी प्रचार करते हैं कि बापू गांधीवादी है! गांधीबापू में कठोरता बहुत थी। और करुणानिधान के बारे में एक बात, करुणानिधान कभी कठोर नहीं बन सकता; खुदाई पर भी नहीं और खुद पर भी नहीं। ये देह पर भी कठोर नहीं होगा। क्योंकि उसको पता है कि 'बड़े भाग मानुष तनु पावा।' ये देहदमन नहीं करेगा।

आज मेरे पास प्रश्न है कि 'बापू, कल आपने कहा था कि भगवान शंकर आशुतोष है, जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं। तो रति पर जल्दी प्रसन्न हो गए लेकिन सती को क्यों इतना तप करवाया?' आप अच्छा सुनते हैं। सती सबला है और रति अबला है। महादेव रति पर जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं क्योंकि रति अबला है। करुणानिधान वो है जो अबला पर जल्दी प्रसन्न हो जाए और सबला को कहे कि तू सबला है, तो कर तप। तो, करुणानिधान वो नहीं कि अपने देह को भी तोड़ डाले। करुणानिधान वो है जो अपने मन पर भी करुणा करता है। वर्ना मन चंचल है। लेकिन करुणानिधान वो है जो मन पर भी करुणा करता है, बुद्धि पर भी करुणा करता है, चित्त पर भी करुणा करता है, अहंकार पर भी करुणा करता है। गांधीबापू जरा कठोर थे। गांधी के कदम पर चलना जरा मुश्किल है। खड़ग की धार पर चलता रहा ये आदमी!

आंधी में भी जलती रही गांधी तेरी मशाल।
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

बाप! तो, कई गांधीवादी लोग कहने लगते हैं कि बापू तो हमारे है। मैं आपका हूं, लेकिन मैं गांधीवादी नहीं हूं। मैं ओशो की बातें करता हूं तो मैं ओशोवादी नहीं हूं। सत्य जहां से मिले, मैं ले लेता हूं। खिडकियां बंद मत करो। गुलाम मत बन जाओ। तुम्हारा आदर्श तुम होने चाहिए। कल एक युवक का प्रश्न था कि 'बापू, ये कथा करते-करते आपको पहुंचना कहां है?' मुझे मुझ तक पहुंचना है। मुझे गनी दहींवाला याद आते हैं-

न धरा सुधी, न गगन सुधी, नहीं उन्नति न पतन सुधी,
अहीं आपणे तो जवुं हतुं फक्त एकमेकना मन सुधी.

कहां पहुंचना है? खुद तक पहुंचना परम निर्वाण है। तो, जहां से सत्य मिले, नाम के साथ ले लेता हूं। बाकी मैं कोई ये मार्गी, कोई ये मार्गी नहीं हूं। यद्यपि मुझे मार्ग का नाम देना हो तो मैं 'त्रिभुवनमार्गी' हूं। और मैं ये भी साफ करूं कि आप मुझसे भी बंधना मत। आप जन्मजात मुक्त हो। आप को मुक्त रहना चाहिए। और ये रिश्ता तो अंदर का होता है। कोई पग बाधा नहीं बनना चाहिए।

तो, शुभ खोज लो, जहां से मिले। और ये देखो, करुणानिधान का प्रसंग चल रहा है। 'रामचरित मानस' में कितनी-कितनी वस्तु के निधान है?

अति सभीत कह सुनु हनुमाना।
पुरुष जुगल बल रूप निधाना।।

राम तो रूप का भी निधान है, बल का भी निधान है।

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना।
होहु तात बल सील निधाना।।

ये भंडार ही भंडार है 'मानस' में। ज्ञाननिधान, गुणनिधान, कल्याणनिधान, शोभानिधान, शीलनिधान। निधान ही निधान है। लेकिन मैं इतना कहकर आगे बढ़ूं कि करुणा न हो तो सब निधान बेकार है। करुणा नहीं तो रूपनिधान कोई कितना ही क्यों न हो! रूप का कोई मूल्य नहीं, यदि करुणा न हो। करुणा न हो तो बल का कोई मूल्य नहीं है; शील भी पूर्ण मात्रा में खिलता नहीं है। मूल में करुणा है। करुणानिधान की व्याख्या एक शे'र में सुनिए-

ये जानते ही नहीं कि किसको क्या दिया मैंने,
ये जानता है कि मुझ पर उधार कितना है।

करुणानिधान ये नहीं जानता कि मैंने दुनिया को कितनी करुणा उड़ेली। वो इतना ही जानता है कि मैं कितनों को अभी करुणा नहीं दे पाया।

मैं 'विनयपत्रिका' की ये करुणानिधानवाली पंक्ति ले आया हूं। अठारह लक्षण है करुणानिधान के। तुलसी 'रामचरित मानस' में कोई शब्दब्रह्म की पूजा करते हैं तो उसका उद्घाटन अपने अन्य ग्रंथों में करते हैं। पहला लक्षण है करुणानिधान का; यद्यपि 'लक्षण' कहना भी मुझे ठीक नहीं लगता; 'स्वभाव' है। करुणानिधान का पहला स्वभाव; जो करुणानिधान होता है वो विश्व में विख्यात होता है। उसकी करुणा उसे विश्वविख्यात कर देती है। ये पहला स्वभाव उसका। जिसस की करुणा उसको विश्वख्याति दे गई। महंमद की करुणा उसको विश्वविख्याति दे गई। हां, महंमद की करुणा। सही तो यही है, कठोरता धर्म में हो ही नहीं सकती। ये दुकानवालों के लेबल है। धर्म 'लेबल' नहीं चाहता, 'लेवल' चाहता है।

महंमदसाहब अली के साथ जा रहे थे। इतने में अली का विरोध करनेवाले कुछ लोग उस पर हमला करने आए। महंमदसाहब खड़े हैं। साक्षी बने रहे। अली को गालियां दी जा रही है, धक्का दिया जा रहा है और जरा भी हस्तक्षेप नहीं किया महंमदसाहब ने। कुछ समय तो ऐसे मौन साक्षी बने रहे। जब बहुत नोबत आई अली पर तो महंमदसाहब वहीं से चल दिये। रहेमान की रहेमत के कारण अली रह गया। ज्यादा मुश्किल नहीं हुई। वो दौड़ता फिर जाता है। महंमदसाहब को कहता है, 'गजब है! मैं आपका हूं, आप मेरे हो और आप भाग निकले!' अली ने अपना आक्रोश बहुत निकाला तब महंमदसाहब ने जवाब दिया कि, 'अली, जिसमें करुणा होती है उसको दस फरिश्ता रक्षा करता है।' ये सूफीवाद है। और मुझे भी अच्छा लगता है कि जब हमारे में करुणा आती है तो दस देवताई रक्षण मिल जाता है। 'लेकिन आप क्यों भाग गए?' तू जब थोड़े कठोर हो कर उसका जवाब देने लगे तो दस फरिश्ते भाग गए! मुझे लगा कि अल्लाह भाग गया तो मैं क्यों रुकूं? मैं भी भाग गया। क्योंकि तेरी करुणा खंडित हो गई। तुझे मुकाबला करने की जरूरत नहीं थी। तुने बायें चढ़ाई और जवाब देने लगा कि मैंने कंगन नहीं पहने हैं! तब मैं भी भाग गया!' ये पुरुषलोग जब बात करते हैं तब कहते हैं, मैंने कंगन नहीं पहने! मातृशरीर के लिए तुलसीदास ने बहुत अच्छा काम किया है। जो लोग तुलसी को नहीं समझे वो बकवास करते हैं! यद्यपि 'मानस' में लिखा है नारी के लिए-

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुं सुखु नाहीं।।

विधाता ने स्त्री को क्यों बनाई? क्योंकि पराधीन रहना पड़ता है। तो इसका मतलब ये हो गया कि नारी पराधीन है; तो इसके समान कोई दुःख नहीं। इसका मतलब सीधा-सादा यही हो गया कि स्त्री स्वाधीन हो जाए तो सुख ही सुख हो जाए। लेकिन तुलसी तुरंत सावधान करता है। जवाब नहीं देता है, जाग्रत करता है। तुलसी ने कहा कि पराधीनता दुःख देती है तो इनसे ज्यादा दुःख स्वाधीनता का दुरुपयोग भी देता है। और

इसमें जानकी फ़ंसी। तराजू लेकर बैठा है तुलसी। कथा आप जानते हैं, जानकी लक्ष्मणजी को कहती है, 'आप अपने भैया के पास जाईए, वो मुश्किल में लगते हैं।' और लक्ष्मणजी ने कहा, 'माँ, मेरा प्रभु कभी मुश्किल में नहीं हो सकता। और वो मुझे आपकी रक्षा सोंपकर गये है।' और सीताजी कुछ मर्मवचन बोल गई। संस्कृत 'रामायण' में तो वो क्या बोली वो भी है। और ऐसे सूत्र लेकर ऐसे लोग टूट पडते हैं! अर्थघटन ठीक नहीं करते। अर्थघटन केवल बुद्धिग्राह्य न रहे, हृदयग्राह्य भी होना चाहिए। एक बार पार्थसारथिस्वामी को पूछा गया कि द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगूठा मांग लिया! गुरु ऐसा कर सकता है? ये कैसा? तो इनका सुंदर इन्टरप्रिटेशन स्वामीजी ने किया कि द्रोण महान है। अंगूठा इसीलिए लिया कि एकलव्य की समस्त वासना खत्म हो चुकी थी। केवल एक अर्जुन को हराने की वासना ही बची थी। तो गुरु द्रोणाचार्य ने सोचा कि इस आदमी की ये वासना उनकी मुक्ति की बाधक है इसलिए अंगूठा ले लिया ताकि किसी से स्पर्धा करने की बात ही छूट जाए। इन्टरप्रिटेशन ऐसा होना चाहिए। और मैं बार-बार कहता हूं कि शास्त्रों में भी संशोधन होना चाहिए। पहले जब मैं रामकथा करता था तो यजमान को एक लिस्ट दे देता था कि विधि के लिए इतनी वस्तुएं तैयार रखना। कथा में विधि होती थी। यद्यपि विधि की महिमा है; नहीं है ऐसा मैं नहीं कहूंगा। कोई कर्मकांड में हो उसका नुकसान हो ऐसा मेरा इरादा नहीं है। शरीर में तीन वस्तुएं होती है-शरीर, प्राण, आत्मा। वेदांत कहता है, तीन में शरीर विभाजित है। आप कोई भी यज्ञ करो तो उसका शरीर है विधि। लेकिन विश्वास जो होता है यज्ञकार्य में वो उनका प्राण है। और किसी भी कर्मकांड की आत्मा है भगवान नारायण। दक्ष यहां चुक गया! यज्ञ किया, विधि को आदर नहीं दिया। और दूसरा जो अंग है यज्ञ का प्राण। विश्वास प्राण है। शंकर को नहीं बुलाया। और यज्ञरूप विष्णु, जो अंतरात्मा है, उसको भी नहीं बुलाया। तो विधि की कुछ महिमा है लेकिन सालों से छूट गया सब। समय पर धीरे-धीरे संशोधन होना चाहिए। फिर मैं एक बार कहूं कि किसी भी कर्मकांडी को चोट लगाने कि लिए मैं नहीं कहता। शरीर भी जरूरी है। लेकिन शरीर, शरीर है। हरिनाम में सब कुछ आ जाता है।

तो, जानकी के बारे में उस समय भी बोला गया होगा लेकिन तुलसी ने संमार्जन कर दिया और 'मरम वचन सीता जब बोला।' इतना ही लिख दिया। तुलसी संमार्जन कर देते हैं। देशकाल के अनुसार, मूल को

> कई गांधीवादी लोग कहने लगते हैं कि बापू तो हमारे है। मैं आपका हूं, लेकिन मैं गांधीवादी नहीं हूं। मैं ओशो की बातें करता हूं तो मैं ओशोवादी नहीं हूं। सत्य जहां से मिले, मैं ले लेता हूं। खिडकियां बंद मत करो। गुलाम मत बन जाओ। तुम्हारा आदर्श तुम होने चाहिए। जहां से सत्य मिले, नाम के साथ मैं ले लेता हूं। बाकी मैं कोई ये मार्गी, कोई ये मार्गी नहीं हूं। यद्यपि मुझे मार्ग का नाम देना हो तो मैं 'त्रिभुवनमार्गी' हूं। और मैं ये भी साफ कहूं कि आप मुझसे भी बंधना मत। आप जन्मजात मुक्त हो। आप को मुक्त रहना चाहिए।

पकड़कर फूल खिलाते हैं। एक ही सुराही, एक ही पैमाना काफ़ी नहीं है। ये जो वसु है, ये जो अस्तित्व का ब्रह्म है, इसमें वैविध्य होना चाहिए। तुलसी सब संमार्जित कर देते हैं। पिटीपिटाई बातें चले तो काफ़ी नहीं है। दुरुपयोग अत्यंत दु:खद बन जाता है। लेकिन लक्ष्मणजी ने जो रेखा खिंची उसमें लक्ष्मणजी ने ये नहीं कहा था कि 'माँ, तू बाहर मत आना।' लक्ष्मणजी ने केवल इतना कहा था कि 'इस रेखा नांघकर कोई अंदर नहीं आ पाएगा।' रेखा को मर्यादा कहते हैं। करुणानिधान कोई हो वो मर्यादा देता है लेकिन उसकी मर्यादा आज्ञामूलक नहीं होती, अनुरोधमूलक होती है। बुद्धपुरुष वो है जो कभी भी आज्ञामूलक मर्यादा अंकित नहीं करता। सात सौ श्लोक पढ़कर फिर छोड़ दिया कृष्ण ने अर्जून पर कि अब तेरी जो मरजी हो वो कर।

तो बाप, करुणानिधान न चाहे तो भी विश्वविख्यात हो जाता है। जिसस, बुद्ध, शंकराचार्य, महादेव, तुकाराम, नरसिंह, गांधीबापू हुए विश्वविख्यात। फिर है 'विश्वेश'; जो करुणानिधान होता है वो विश्व का श्रद्धेय बन जाता है। विश्व उसकी हर बात को सरआंखो करेगा। विश्वेश मानी विश्व का इश। बाद में है, 'विश्वायतन'; जो करुणानिधान है वो विश्वायतन है। उसका अयन, गमन, आना-जाना, उसके प्रत्येक यत्न विश्वमंगल के लिए होते हैं। 'विश्वमरजाद'; करुणानिधान का लक्षण है, उनके समान विश्व में कोई मरजादा नहीं निभा सकता। और वो मरजादा आदेशमूलक नहीं, अनुरोधमूलक। करुणानिधान जो होता है वो 'गगनगामी' होता है। उसका रास्ता आकाश का होता है। वो संकीर्ण नहीं होता, विशालता का यात्री होता है। ये लक्षण है, स्वभाव है। जो करुणानिधान होगा उसको लोग भगवान बना देंगे। लोग उसको ब्रह्मतुल्य मानेंगे। उसको ब्रह्म की पदवी न चाहते हुए मिल जाती है।

'वागीश'; वाणी का ईश होता है। उसका वक्तव्य अकाटय होता है, करुणा के कारण। करुणानिधान का स्वभाव होता है, 'व्यापक।' ये संकीर्ण नहीं होता। और आप सोचिए कि कई प्रकार के धर्म दुनिया में चल रहे हैं उनमें कई धर्मों के प्रचार क्यों करना पड़ता है? और भारतीय धर्म का प्रचार क्यों नहीं करना पड़ता? प्रचार करना पड़ता है उनका मतलब कि धर्म छोटा है, संकीर्ण है।

'विमल'; मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार-चारों अंत:करण उसका निर्मल-विमल होता है। 'विपुल'; 'बलवान' होता है। करुणानिधान जैसा कोई विपुल मात्रा में बलिष्ठ नहीं होता। कोई धन का स्वामी है तो वो चाहे तो किसी को धन दे सकता है। प्रतिष्ठा का स्वामी दूसरों को प्रतिष्ठा दे सकता है। करुणानिधान निर्वाण का स्वामी है, इसलिए चूटकी बजाते निर्वाण दे देता है। करुणा के कारण निर्वाण बांटता है। कोई भक्त यदि करुणानिधान से विमुख हो भी जाए, लेकिन करुणानिधान वो है कि 'भक्त अनुकूल', वो सदा भक्त के अनुकूल रहेगा।

करुणानिधान का आगे का स्वभाव है, 'भवशूल-निर्मूलकर'; संसार के शूल जो हमें चूभते हैं उसको निर्मूल करना किसी करुणानिधान बुद्धपुरुष का स्वभाव है। आगे का स्वभाव 'तूल-अघ-नाम'; पापरूपी रुई को जिसका नाम पावक बनकर जला देता है, ये करुणानिधान का लक्षण है। 'तरलतृष्णा-तनी-तरिण'; एकदम प्रगाढ़ तृष्णा का अंधेरा जिसमें सूर्य का प्रकाश करता रहे वो करुणानिधान। 'धरणीधरण'; करुणानिधान धरणीधरण है। विश्वपालक हो जाता है। पूरी धरती को धारण कर लेता है। 'शरण-भयहरण'; शरण में जो जाता है उसका भय हर लेता है। वो करुणानिधान का स्वभाव है। अब ये 'विनयपत्रिका' की चारों पंक्तियां ऐसे सुन लीजिए -

विश्व-विख्यात, विश्वेश, विश्वायतन,
विश्वमरजाद, व्यालारिगामी।
ब्रह्म, वरदेश, वागीश, व्यापक,
विमल, विपुल, बलवान, निर्वानस्वामी।।
भक्त-अनुकूल, भवशूल-निर्मूलकर,
तूल-अघ-नाम पावक-समानं।
तरलतृष्णा-तमी-तरणि, धरणीधरण,
शरण-भयहरण, करुणानिधानं।।

हे करुणानिधान! तू अठारह स्वभाव-गुणों से संपन्न है।

एक जिज्ञासा है कि बापू, 'कल आपने कहा था कि आपको आपके श्रोता पर ममता है, तो श्रोता के लक्षण कैसे होने चाहिए, ताकि हम आपकी ममता पा सके।' मैं गुण-लक्षण देखकर ममता नहीं करता। तो तो मेरी ममता अपराधी हो जाएगी! और श्रोता के गुण मैं क्या बताऊं? तुलसी ने ओलरेडी बताया है-

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास।।

गोस्वामीजी 'मानस' में ओलरेडी कह देते हैं कि जिस श्रोता में इतने लक्षण होंगे उसके सामने बुद्धपुरुष गोप्य से गोप्य वस्तु भी प्रकाशित कर देगा। तुलसी की दृष्टि में श्रोता के ये लक्षण है। पहला लक्षण, 'श्रोता सुमति।' सुमति होना चाहिए। किसी वक्ता को सुनो तो वक्ता के प्रति दुर्मति रखकर मत सुनना। बार-बार जो मैं कहता हूं कि द्वेषमुक्त चित्त से सुनना। श्रोता का पहला लक्षण सुमति; सद्भाव, दुर्भाव नहीं। 'सुसील'; श्रोता का दूसरा लक्षण है, शील हो कि कैसे बेठना, कैसे उठना, कैसे बोलना-ये सब शील। और शास्त्र की बात आती है तो वो दूसरी है लेकिन मैंने शायद आप से बातें कही है कि मेरी दृष्टि में तीन प्रकार के श्रोता है-राजसी श्रोता, तामसी श्रोता और सात्त्विक श्रोता। राजसी श्रोता वो है कि जिसको केवल मनोरंजन चाहिए। तामसी श्रोता वो है जो सुने बिना रह न सके लेकिन खीज में सुने। सात्त्विकी श्रोता केवल कान खुले रख दे, न कोई प्रश्न, न कुछ जानना; बस! अमृत पीना है। लेकिन आखिरी श्रोता तो वो है, गुणातीत श्रोता। न रजस, न तमस,न सात्त्विक। वक्ता भी तीन प्रकार के होते हैं। राजसी वक्ता ठाठमाठ में होते हैं। कोई कोई वक्ता तामसी होते हैं, श्रोता पर टूट पड़े कि पापीओ! कुछ वक्ता सात्त्विक होते हैं। लेकिन वो वक्ता करुणानिधान है जो त्रिगुणातीत होता है। ब्रह्मानंदजी कहते हैं-

त्रिगुणातीत फिरत तनु त्यागी,
रीत जगत से न्यारी।
ब्रह्मानंद संतन की सोबत,
मिलत है प्रगट मुरारी।

तो श्रोता सुमति, सुशील होना चाहिए। आगे है 'सुचि।' श्रोता स्वच्छ हो इतना ही पर्याप्त नहीं; अंदर से पवित्र हो। और चौथा लक्षण, 'कथारसिक।' कथारस का रसिक होना चाहिए। और आखिरी लक्षण 'हरिदास।' हरिदास हो, प्रपन्न हो।

आईए, अब हम रामजनम का गायन कर लें। बाप! कल हम संक्षेप में बातें कर रहे थे कि कैलास के वेदविदित वटवृक्ष की छांव में भगवान महादेव विराजित है। पार्वती जिज्ञासा करती है कि मेरे संदेह को रामकथा के माध्यम से आप हर लो। शिवजी अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। दो बार धन्यवाद दे देते हैं, 'हे पार्वती, राम वो परमतत्त्व का नाम है जो बिना पैर चलता रहता है; बिना हाथ कार्य करता है। कारण की कोई जरुरत नहीं। बिना पैर सबको छूता है; बिना नेत्र सबको देखता है; बिना जुबां परम वक्ता है। लगता है हमारे जैसा लेकिन उसकी करणी लौकिक नहीं होती, अलौकिक होती है। और जिसकी महिमा वेद भी गायन करने में असमर्थ है ऐसा परमतत्त्व धरती पर भक्त के प्रति भाववश क्रीड़ा करने के लिए पधारे थे।' राम अवतार के पांच कारणों की गोस्वामीजी ने चर्चा की; जय-विजय, सती वृंदा का श्राप, देवर्षि नारद का श्राप, मनु और शतरूपा की तपस्या और पांचवां कारण राजा प्रतापभानु।

'रामचरित मानस' में राम के प्रागट्य की कथा से पहले रावण के अवतार की कथा कही। रावण ने तप से दुर्लभ वरदान प्राप्त किये। तपस्या अच्छी वस्तु है। तपस्यावश देवताओं को वरदान भी देना पड़ता है। बड़े-बड़े वरदान प्राप्त किए लेकिन रावण वरदान का दुरुपयोग करने लगा। पूरे संसार को रावण ने भ्रष्टता में डूबो दिया। आखिर में रावण के त्रास से पृथ्वी अकुला उठी और गाय का रूप लेकर ऋषिमुनियों के पास रोने लगी। ऋषिमुनियों ने भी अपनी असमर्थता बताई। सब देवताओं के पास गये। फिर सब ब्रह्मा के पास गए। सामूहिक पुकार हुआ। आकाशवाणी होती है, 'डरो नहीं, मैं स्वयं श्राप या वरदानों के कारण धरती पर आऊंगा।'

यहां प्रतीक्षा हो रही है और यहां तुलसीदासजी प्रकरण बदल देते हैं। परमात्मा के अवतरण का प्रसंग उठाते गोस्वामीजी हम सबको लिए चलते हैं श्रीधाम अयोध्या। महाराज दशरथथी धर्मधुरंधर है, यानी उनमें भक्तियोग भी है, कर्मयोग भी है, ज्ञानयोग भी है। हर प्रकारना सुख था। महाराज दशरथजी का दाम्पत्य भी बहुत प्यारा था। एक ही पीड़ा थी कि पुत्र नहीं है। दशरथजी गुरुगृह जाते हैं। कहीं से भी समाधान नहीं मिलता तो वो ही तो एक दर है जहां रोया जाता है। अपना दु:ख-सुख सब गुरु को बता दिया। वशिष्ठजी ने कहा कि महाराज, मैं तो चाहता था कि आपके आंगन में पुत्र खेले लेकिन आप कभी जिज्ञासा ही न करे, मैं क्या करूं? अब आ ही गए हैं तो एक नहीं, चार पुत्रों के पिता हो जाओगे। और सामान्य नहीं, त्रिभुवनविदित पुत्रों के बाप बनोगे। लेकिन वशिष्ठजी कोई चमत्कार नहीं करते। साधु आश्रित का कोई काम करता है लेकिन चमत्कार से नहीं, अपनी तपस्या का उपयोग करके। शृंगी को बुलाया। पुत्र कामेष्टि यज्ञ संपन्न होता है। यज्ञपुरुष प्रगट आये और वशिष्ठजी को प्रसाद का चरु देते हुए कहते हैं, 'ये खीर राजा को दीजिएगा और तीनों रानियों को यथायोग्य बांट दे।' दशरथजी ने प्रिय रानियों को खीर जथाजोग बांट दी। भगवान गर्भ में आ गए। समस्त लोक में प्रसन्नता छा गई। समयमर्यादा पूरी हुई। भगवान को प्रगट होने की बेला आई। जोग लगन ग्रह वार तिथि सब अनुकूल हुआ। चराचर में सुख महसूस होता जा रहा है क्योंकि रामजनम सुख की जड़ें है। और प्रभु के प्रागट्य की वो पल निकट आई। नौमि तिथि है। शुक्ल पक्ष है। भौम वासर है। अभिजित है। मध्याह्न का समय है। देवताओं ने आकाश को संकुल कर दिया है। मंद-सुगंध शीतल वायु बहने लगे। सरजू में अमृतधारा बहने लगी है। सब प्रसन्न वातावरण हो चुका है। देवतागण स्तुति कर रहे हैं। जगनिवास परमात्मा माँ कौशल्या के राजप्रासाद में प्रगट होते हैं। तुलसीदासजी ने लिख दिया-

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

परमात्मा की दिव्य झांकी करते माँ असमर्थ हो गई स्तुति गाने में! माँ को ज्ञान हुआ कि ये ब्रह्म मेरे आंगन आया है। फिर परमात्मा माँ के कहने पर मानव शिशुरूप धारण कर लेते हैं। रोने लगे श्रीहरि। और बालरुदन की आवाज़ भवन से बाहर गई। पहली अनुभूति ये सुनकर कि मेरे घर पुत्रजन्म हुआ, दशरथ ब्रह्मानंद में डूबे। और ये ब्रह्म है कि भ्रम उसका निर्णय वशिष्ठजी करते हैं। वशिष्ठजी ने निर्णय दिया कि साक्षात् ब्रह्म बालक बनकर आये हैं। अब ब्रह्मानंद के बाद भक्तिपरक शब्द आया, 'परमानंद।' परमानंद में डूबे महाराज। और पूरी अयोध्या में पुत्रजन्म की बधाई शुरू होती है।

कथा-दर्शन

- 'रामचरित मानस' अध्यात्मजगत की संपदा है।
- परमात्मा किसी का मुकुट बन सकता है तो किसी के लिए पादुका भी बन सकता है।
- भक्ति कायम युवान होती है। ज्ञान-वैराग्य बूढ़ा होता है।
- बुद्धपुरुष सदैव करुणानिधान होता है।
- जहां तक संभव हो, बुद्धपुरुष के अपराध से बचिए।
- करुणानिधान कभी कठोर नहीं बन सकता ; खुदाई पर भी नहीं और खुद पर भी नहीं।
- करुणा वो तत्त्व है जो सब पर समान रूप में बरसती है।
- कृपा और करुणा दोनों सगोत्र है।
- किसी बुद्धपुरुष की पादुका हमारी बहुत बड़ी रक्षा है।
- गुरु की पादुका भव तैरने की नौका है।
- पवित्रतम शब्दों में से एक शब्द है 'साधु।'
- साधु साधन नहीं है, साधु साध्य है।
- सत्य हिमालय है। प्रेम उनमें से बही गंगा है। और करुणा सागर है।
- साधन सदैव सांप्रदायिक है, साध्य सदैव बिनसांप्रदायिक है।
- स्वीकार आदमी को श्रेष्ठ बनाता है।
- स्वीकार जिंदगी है, अस्वीकार मौत है।
- शास्त्र सिद्धांत देता है, संतोष नहीं देता।
- विज्ञान समता देता है, अध्यात्म संतोष देता है।
- वक्ता बोले तो विवेक से बोले और श्रोता सुने तो विश्वास से सुने।
- उपर से उदासीन रहो और भीतर से सिक्त रहो।
- प्रसन्नता और सुख पदार्थ आधारित नहीं होते, आंतरिक संकल्प आधारित होते हैं।

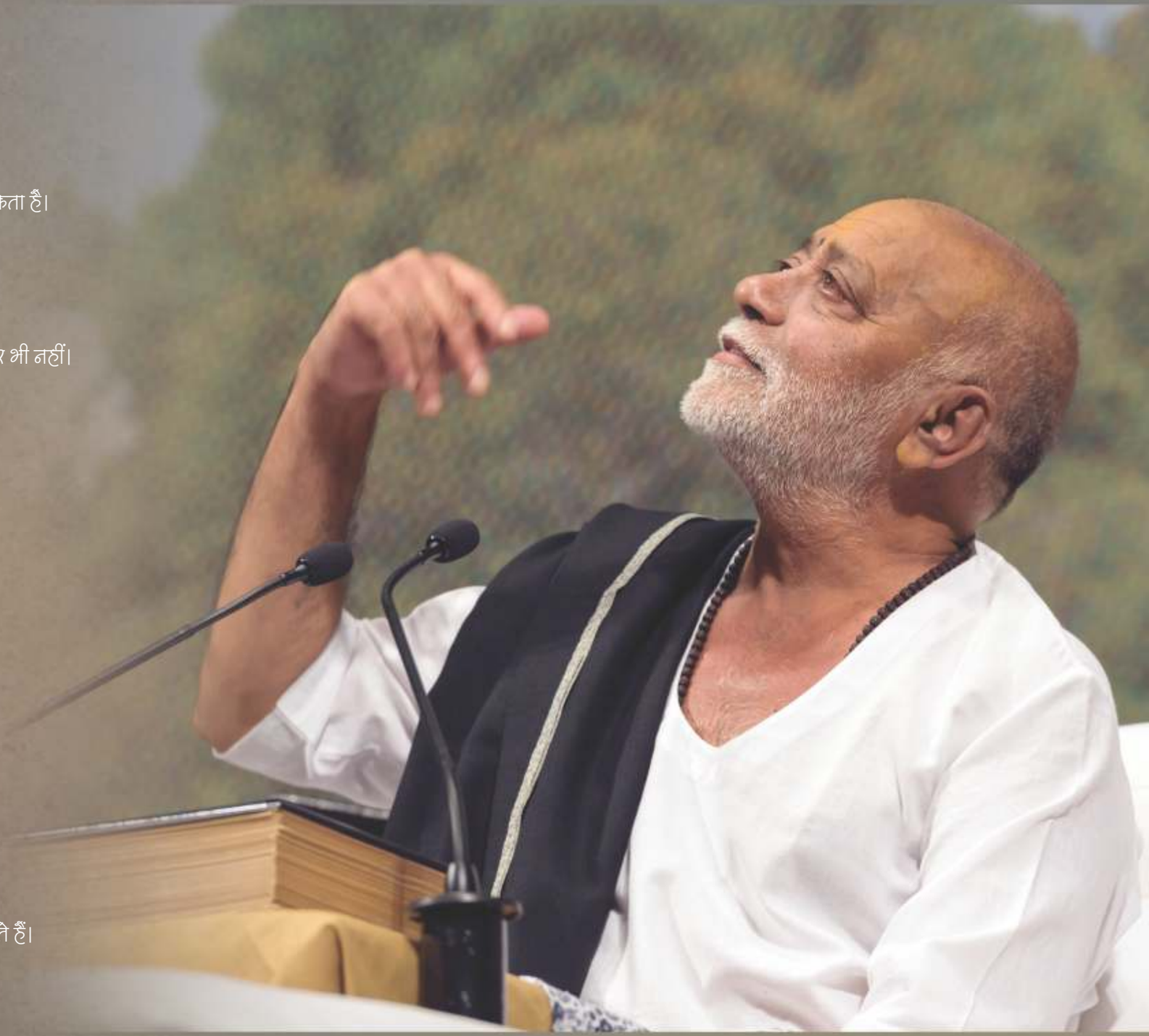

ये मेरा 'मानससूत्र' है

मानस-करुनानिधान : ६

'मानस-करुनानिधान' के बारे में हम सब मिलकर सूत्रात्मक रूप में कुछ संवाद कर रहे हैं। कल की जो जिज्ञासा थी वहीं से शुरू करूं। एक बात आज मेरे पास ये भी है कि कल जो मुझे एक सूत्र मिला था कि साधु जवाब नहीं देता, जाग्रत करता है। उसके बारे में कुछ जिज्ञासाएं करुणानिधान की है कि वो कैसे खाता है, कैसे पीता है, कैसे उठता है, कैसे बैठता है, कैसे देखता है, कैसे बोलता है?

पहले तो ये कहूं कि हमारे देश में प्रश्न से बहुत ऊंचा स्थान रखती है जिज्ञासा। प्रश्न आप मुझे पूछे तो मेरी अक्ल के अनुसार मैं उसका उत्तर दे सकता हूं, न भी दे पाऊं। लेकिन आप जिज्ञासा करे वो कृपया आप उत्तर के लिए न करे क्योंकि जिज्ञासा इसीलिए की जाए कि हम विशेष जाग्रत हो। प्रश्न का मतलब तो सीधा है कि परीक्षावृत्ति से भी पूछा जाए, उसे प्रश्न कहते हैं। और फिर कुछ छूट दी जाती है जैसे कि इन चार में से किसी भी तीन के जवाब दो। प्रश्न में परीक्षावृत्ति भी हो सकती है और होती है। जिज्ञासा में परीक्षावृत्ति नहीं होती। जिज्ञासा में भीगे नयन करके औपनिषदीय रूप में किसी बुद्धपुरुष के पास बैठकर कुछ विशेष जागृति की एक तीव्र तमन्ना होती है। शायद वो आप कागज में लिखकर बताए, मौन रहकर भी आप के अंदर ये उठे। आपकी जागृति के लिए जवाब नहीं मिलेगा क्योंकि जवाब तो सवाल का होता है। जिज्ञासा सवाल नहीं है। इसलिए हमारे देश ने 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' कहा। ब्रह्म के बारे में प्रश्न नहीं, जिज्ञासा। हां, एक 'प्रश्नोपनिषद' भी है। एक उपनिषद है 'केनोपनिषद।' उसमें शुरू-शुरू में आपको सब प्रश्न ही दिखेंगे। तत्त्वत: ये प्रश्न नहीं है, जिज्ञासा ही है। 'अथातो प्रेमजिज्ञासा', 'अथातो भक्तिजिज्ञासा।'

तो, इसमें प्यारा शब्द है 'जिज्ञासा।' इसमें बुद्धपुरुष को नापना नहीं होता है, अधिक पाना होता है। और कभी जिज्ञासा करनेवाला ये नहीं लिखता कि 'हे परम पूज्य वसिष्ठमुनि।' जिज्ञासा उसके सामने की जाए जो करुणानिधान समस्त विशेषणों से मुक्त हो गया। आप सोचो, आपने कभी पढ़ा है कि 'परम पूज्य कृष्ण भगवान।' बड़ा भद्दा लगता है! 'परम पूज्य' तो हमें होना है, या तो हम बना देते हैं। विशेषण तो प्रश्न पूछनेवाले लगा सकते हैं। प्यार में विशेषण खत्म हो जाता है। यारो! प्यार में नाम भी खत्म हो जाता है। प्रभु से प्यार करो, प्यार में सब विशेषण छूट जाते हैं। पूजा करो तो 'पूज्य' लिखो; प्यार करो तो हटाओ। प्यार आते ही विशेषण हट जाता हैं। प्यार विशेषणमुक्त कर देता है। हमारे यहां गुरु का नाम लोग क्यों नहीं लेते? नाम भी छूट जाता है। लेकिन फिर कोई शब्द तो यूझ करना पड़ता है, कोई अवलंबन तो लेना पड़ता है। इसलिए हम कुछ न कुछ बोल देते हैं कि 'ठाकुर', 'भगवन्।' प्रेम चाहता है, सब छूटे। प्रश्न में संबोधन संभवित है, जिज्ञासा में नहीं। जिज्ञासा प्रेम से फूटी एक तीव्र तमन्ना है। तो, मेरे भाई-बहन, करुणानिधान जो है; हमारे यहां ग्रंथों में करुणानिधान की परिभाषा एक ये भी है कि सर्जन करता है वो भी करुणानिधान है; परिपालन करता है वो भी करुणानिधान है और विलय कर देता है वो भी करुणानिधान है।

तो, कल की जो जिज्ञासा थी कि करुणानिधान जो है वो खाता क्या है? पीता क्या है? अपना तो सूत्र के रूप में संवाद होता है। सूत्रात्मक रहता है सब। सूत्र की बड़ी महिमा है। इसीलिए व्यास ने 'ब्रह्मसूत्र' कहा। मणिओं की इतनी महिमा नहीं, जितनी सूत्र की है। इसलिए व्यास ले आए 'ब्रह्मसूत्र'; शांडिल्य और नारद ले आए 'भक्तिसूत्र'; कपिल भगवान ले आए 'सांख्यसूत्र'; कणाद, गौतम आदि महर्षिगण कोई 'न्यायसूत्र' ले आया; कोई 'धर्मसूत्र' ले आया; भगवान पतंजलि इसी परंपरा में आए तो 'योगसूत्र' ले आए। जैनों में 'कल्पसूत्र।' अपनी चर्चा सूत्रात्मक रहती है। ये मेरा 'मानससूत्र' है। तो, व्यासपीठ की चर्चा सूत्रात्मक रहती है। कुछ सूत्र। करुणानिधान जो है वो क्या खाता है? क्या पीता है? मैं आपसे भी कुछ जिज्ञासा करूं? आपमें से कोई बताएगा कि करुणानिधान क्या खाता है? मेरी समझ में करुणानिधान गम खाता है। पूर्ण सत्य होते हुए भी गम खा जाएगा। यहां मेरा 'गम' शब्द बहुत ऊंचाई को छुआ हुआ है। आपने कभी देखा है कि करुणानिधान जो होता है वो कितना गम खा लेता है? आश्रित कुछ भी करे, नहला-धूलाकर बीस-बीस साल से तैयार किया है। और एक ही मिनट में धूलधूसरित हो जाए तो भी गम खा लेता है कि दायित्व मेरा है।

एक दिन आनंद ने बुद्ध से कहा कि 'तथागत, हमारे संघ में कुछ ऐसे भिख्खु है जो संघ के नियमों को निभाते नहीं है।' तथागत ने आनंद से पूछा, 'भैया, तू मुझे अभी भी 'गौतम' समझता है कि 'बुद्ध' समझता है?' कहा, 'मैंने आप को 'तथागत' कहा; 'बुद्ध' समझता हूं। 'तो तुम्हें पता है कि संघ में कुछ लोग ऐसा कर रहे हैं, मुझे पता नहीं होगा?' कल वसीमसाहब ने एक सुंदर शे'र पढ़ा था-

मैं उसे नज़र मिलाते हुए भी डरता हूं।
आंखों आंखों में वो ज़हन पढ़ने लगता है।

वो मेरे अनखुले पत्तें भी पढ़ लेता है इसलिए मैं नजरें नहीं मिला सकता। बहुत प्यारा शे'र-

तुझे पाने की कोशिश में कुछ इतना खो चुका हूं।
तू मिल भी अगर जाए तो मिलने का गम होता है।

कितनी ऊंचाई से आदमी बात कर गया! तो, बुद्ध ने कहा, 'आनंद, मैं भी तो जानता हूं।' लेकिन बुद्ध गम खा गये होंगे।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

●

छोरुं कछोरुं थाय,
तुं तो मावतर के'वाय।

'मावतर' शब्द बड़ा प्यारा है। कितना छोटा लगता है 'पेरेन्ट्स', 'मावतर' के सामने! 'पितृदेवो भव'; 'मातृदेवो भव'; ये भी बहुत ऊंचे लगते हैं, पकड़े नहीं जाते। लेकिन 'मावतर' शब्द छूते ही अंदर के केमिकल बदलने लगते हैं।

तो, मेरी समझ में करुणानिधान वो है जो गम खा लेता है। मुस्कुराकर सच्चा होते हुए भी अपराध को कबूल कर लेता है। राज कौशिक का एक शे'र है-

यूं कहने से पहले बहुत सोचता हूं।
मैं जो भी कहूंगा वो सब मान लेगा।

मैं तो कुछ भी तेरे पास मांगूं, तू दे मत देना। क्योंकि तू तो जो मांगूगा वो दे देगा। तो, गम खाना। कई बुद्धपुरुष हमारे यहां ऐसे हुए हैं जिन्होंने गम खाए। संत मूलदास। भगवान तथागत बुद्ध को जब विषाक्त भोजन मिला, आख़िरी भोजन। हर बुद्धपुरुष का एक आख़िरी भोजन होता है। सौराष्ट्र के महर्षि दयानंद सरस्वतीजी को भी भोजन में ऐसा कुछ दिया गया था।

आगे बढ़ें। मेरी समझ में करुणानिधान गम खाता है और करुणानिधान जहर पीता है। शिव है ये। देवता तो अमृत पी जाते हैं। गांधी ने जहर पिया यानी कि पूरी जिंदगी! एक बार तो वो प्रार्थनासभा में बोल गये कि ये मेरा अरण्यरुदन चल रहा है। गांधी ने गोली के रूप में जहर पिया। इसलिए मेघाणी ने कहा-

सुर-असुरना आ नवयुगी उदधि-वलोणे;
शी छे गतागम रत्नना कामीजनोने?
तुं विना, शंभु! कोण पीशे झेर दोणे?
हैया लगी गळवा गरल झट जाओ रे, बापू!
आ सौम्य-रौद्र! कराल-कोमल! जाओ रे, बापू!

देश को आज़ादी मिली तब का चर्चिल का एक वाक्य सुनना। जब भारत को आज़ादी मिली तब चर्चिल दु:खी हुआ। उसने कहा, 'देश आज़ाद हुआ, अच्छी बात है; मैं कोई ज्योतिष नहीं हूं, लेकिन मेरी आत्मा कहती है कि अब ये देश लुच्चे और लफंगों के हाथ में चला जाएगा!' तो जहर पी गए गांधी और अमृत हम सब पी रहे हैं। आपने परिवार में भी देखा होगा कि परिवार में एक मोभी जहर पीता है और सबको कितना संभालता है! जहर पीना उनकी नियति है, क्योंकि स्वभाव करुणानिधान है। तो, मेरी समझ में बुद्धपुरुष का पीना जहर होता है। और फिर कवि 'काग' की वो अमर पंक्ति-

झडपेलुं अमृत अमर करशे,
पण अभय नहीं आपी शकशे।

बाप! करुणानिधान पीता है जहर। अब करुणानिधान कहां बैठता है, कैसे बैठता है, कैसे उठता है? यहां बैठना-उठना कोई स्थूल चेष्टा नहीं है, वो बिलग संदर्भ में है। कैसे बैठता है? मैं भगवान शंकराचार्य का आश्रय लूंगा, 'एकान्ते सुखमास्यताम्।' बुद्धपुरुष होता है वो एकान्त में बैठता है। फिर एकान्त में वो जैसे बेठता है वैसे बैठता है। शंकर को तो करुणानिधान कहने में आपत्ति हो ही नहीं सकती ना? और शंकर जैसे बैठते हैं, वैसे बुद्धपुरुष बैठता है-

निज कर डासि नागरिपु छाला।
बैठे सहजहिं संभु कृपाला।।

शब्द देखिए 'कृपाला।' ये है करुणानिधान। और गजब की बात है कि हमने मूर्तिओं में राम-कृष्ण को सदियों से खड़े रखे हैं, शंकर को कोई खड़ा नहीं रख सकता! वो सहज बैठा ही है। इसी परंपरा में शंकराचार्य कहते हैं, 'एकान्ते सुखमास्यताम्।' तो, सीधा-सादा जवाब ये हो जाता है कि वो एकान्तवासी है। 'भगवद्गीता' लो, 'अरतिर्न जनसंसदी', जन संसद में जिसको रति नहीं है; भीड़ में जिस को रति नहीं है; भीड़ जिसका स्वभाव नहीं है। एकान्त में करुणानिधान बैठता है। फिर कैसे बैठता है? तो 'मानस' जवाब देता है-

बैठे सहजहिं संभु कृपाला।

जैसे उसकी सहजता वैसे बैठे होंगे। कोई परंपरा सी नहीं। तो, परमकृपालु, करुणानिधान शिव कैलासी एकान्त में सहज बैठ गए। बैठते हैं बुद्धपुरुष धीरे-धीरे, उठते हैं तेजी से। ध्यान रखिएगा। क्योंकि उनका बैठना खुद के लिए है, इसलिए धीरे-धीरे है, लेकिन उठना खुदाई के लिए है, 'किस पर भीड़ पड़ी?' उठने से विश्व को विश्राम देता है, इसलिए तीव्र गति से दौड़ता है। करुणा करनेवाला देर नहीं कर सकता, उसकी गति तेज होनी ही चाहिए। करुणा देर नहीं कर सकती। एक बेटी बाप के पास आकर रोए तो बाप ये कहेगा कि बेटी, आधे घंटे के बाद मैं तेरे आंसू पोछूंगा? नहीं। जगकल्याण के लिए उसका उठना तीव्रता से भरा होता है।

आगे बढ़ें? करुणानिधान कैसे सोता है? करुणानिधान बुद्धपुरुष जागृति में सोता है। उसकी निंद में भी जागृति होती है। हमारी जागृति में भी ख्वाब होते हैं! वो जागृति में सोता है। और समाधि जैसी कोई जागृति नहीं। और फ़िर आदि जगद्गुरु शंकराचार्य 'निद्रासमाधिस्थिति।' सोए तो भी सावधान। मैं आप से कहूं कि लक्ष्मणजी चौदह साल जागे। योगी कर सकता है। इसमें मुझे कोई डाउट नहीं है, लक्ष्मण जाग सकता है। लेकिन हमारी बुद्धि में नहीं आता कि चौदह साल तक जागे? यदि बौद्धिक न लगे ये वस्तु तो बौद्धिक लगे इसलिए हम सोच सकते हैं कि सोए तो होंगे लेकिन जागृतिपूर्वक सोए होंगे। सोना तो पड़ता है, शरीर है; लेकिन किसी का काम एक घंटे में पूरा हो सकता है। तो, करुणानिधान बुद्धपुरुष जागृति में सोते हैं। अब बुद्धपुरुष कैसे देखता है?

पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।

यहां 'मानस' मदद करता है। जिस व्यक्ति को दूसरे के दु:ख से दु:ख होता है और दूसरे का सुख देखकर उससे भी ज्यादा सुख होता है, ये दृष्टिकोण करुणानिधान का है। हमारी तकलीफ़ क्या है कि हम 'कठोरनिधान' है! हम आधे हैं, पूरे नहीं हैं इसलिए हमें दूसरों के दु:ख से दु:ख तो होता है लेकिन दूसरों के सुख से सुखी होना बहुत कठिन है! आप जिस क्षेत्र में हो उसमें सोचो ना! सब में दूसरों का विकास देखकर कहां सुख होता है? दूसरों के सुख से हमें सुख क्यों नहीं मिलता? कथा सुनने के बाद तो ये संस्कार हम बनाए कि दूसरा मेरे से ज्यादा कमाई कर गया, उसको पता न लगे ऐसे उनके लिए प्रार्थना करो कि परमात्मा उसे ओर दे और सद्मति भी दे कि उसका सदुपयोग करे। दूसरों को यश मिल जाए तो हमें कितना दु:ख होता है! यद्यपि तुलसीदासजी ने कहा है कि 'मोह सकल व्याधिन कर मूला।' ये अनुभव में ठीक है कि समस्त व्याधि का मूल मोह है। लेकिन कोई अच्छी चीज देखो तो जीव स्वभाव में मोह होगा। एक चोकलेट देखो तो भी होगा कि आधी मैं खाऊं। आकर्षण तो है। मोह से कैसे छूटेंगे? तो, मोह अच्छा तो नहीं है लेकिन मैं मेरी व्यक्तिगत बात करता हूं कि मोह से भी सबसे खतरनाक कोई विकार हो तो वो द्वेष है। प्लीज, बचे। तुम्हारा रोज का इतना भजन तुम्हारा द्वेष खा जाता है! हम दूसरों के सुख को देखकर द्वेषी क्यों होते हैं? मैंने इस कथा में कहा है कि द्वेष मृत्यु है। शंकराचार्य शंकरावतार है इसलिए कहते हैं, 'न मे द्वेषरागो।' कोई अच्छा गा रहा है तो क्या हुआ? कोई अच्छा लिखता है तो आशीर्वाद दो। कोई मंच पर से अच्छा बोल गया तो दुआ दो। लेकिन द्वेष! सबसे ज्यादा खतरनाक दुश्मन द्वेष है। तो, 'पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।' ये है करुणानिधान बुद्धपुरुष के देखने का दृष्टिकोण।

मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो।।

गौरी के आशीर्वाद में भी यदि विषय के अनुकूल आप देखे तो करुणानिधान की तीन परिभाषा है; 'सुजान', 'शील', 'सनेह।' ये करुणानिधान की व्याख्या है। और पांच बार 'करुणानिधान' शब्द है इनमें तीन बार तो केन्द्र में जानकी ही है; दो बार में पादुका है।

जनकसुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।

केन्द्र में जानकी है। और 'सुन्दरकांड' में-

राम दूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुनानिधान की।।

गौरी अंतर्यामी है। उनको पता है कि जानकी करुणानिधान की अति प्रिया है। इसलिए आशीर्वाद में अंतर्यामी ने यही शब्द का प्रयोग किया कि 'तुझे करुणानिधान मिलेगा।' और हनुमानजी सपथ लेते हैं तो 'सपथ करुनानिधान की।' भगवती गौरी के वचनानुसार करुणानिधान की ये तीन प्रकार की व्याख्या हम विषय संदर्भ में कर सकते हैं। उसको करुणानिधान समझना जो सुजान हो। 'सुजान' 'रामायण'का बहुत प्यारा शब्द है। किसान बीज बोता है और जो बोया है वो तो उगेगा। लेकिन जो बोया नहीं था वो बेकार कितना उगता है, अगल-बगल में! कथा में कुछ संस्कार के बीज तुलसी हम सब में बोते हैं, फिर भी हम क्यों द्वेष करते हैं? क्योंकि जो बोया नहीं है ऐसा ओलरेडी हमारे जनम-जनम के बीज अंदर पड़े हैं। किसान खुरपी लेता है और बेकार घासको निकालता है। अब इस बेकार को निकालके एक को बचाना है। हो सकता है कि ये सब को निकालते हुए ये एक भी निकल जाए तो? लेकिन 'कृषी निरावहिं चतुर किसाना।' चतुर का अर्थ है सुजान। सुजान किसान। उसे पता है कि भगवद्कथा से जो कुछ मैंने पाया वो निकल न जाए। निकलने तो चाहिए जनम-जनम के बेकार संस्कार। जो सुजान किसान है, 'जिमि बुध तजहिं मोह मद माना।'

तो, भगवद्कथा से हमारे में भी उगती तो है अच्छी बातें लेकिन ओर मोह-मद-मान आदि बेकार घास संस्कार के कारण निकलता है तब खुरपी लेकर सुजान साधक को कथा से मिले संस्कार से पनपा वो पौधा कहीं निकल न जाए। उसमें 'मद' शब्द है। कुछ प्रतिष्ठा की बारिश हो जाए तो तुरंत ही मद का घास फूट निकलता है। ये जो 'पद' है उसको 'मद' बननें मे देर कितनी?

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।।

तो, थोड़ी-सी प्रशंसा में पद, मद बनने में देर नहीं लगती। प्रतिष्ठा की बारिश से मद आने में देर नहीं लगती। दशों दिशाओं में वाह-वाह होने लगे उसी समय

> सूत्र की बड़ी महिमा है। मणिओं की इतनी महिमा नहीं, जितनी सूत्र की है। इसलिए व्यास ले आए 'ब्रह्मसूत्र'। शांडिल्य और नारद ले आए 'भक्तिसूत्र'। कपिल भगवान ले आए 'सांख्यसूत्र'। कणाद, गौतम आदि महर्षिगण कोई 'न्यायसूत्र' ले आया। कोई 'धर्मसूत्र' ले आया; भगवान पतंजलि इसी परंपरा में आए तो 'योगसूत्र' ले आए। जैनों में 'कल्पसूत्र।' अपनी चर्चा सूत्रात्मक रहती है। ये मेरा 'मानससूत्र' है। व्यासपीठ की चर्चा सूत्रात्मक रहती है।

अहंकार न आए इसलिए चतुर किसान मद के पौधे का निवारण करता है। खुरपी लेकर निंदामण करता है।

तो, 'करुणानिधान' की गौरीवचन में तीन व्याख्या; उसमें एक सुजान।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा।
तिन्हहि राम पद अति अनुरागा।।
तापस सम दम दया निधाना।
परमारथ पथ परम सुजाना।।

'सुजान।' जो करुणानिधान है वो सुजान होता है। जितनी मात्रा जिसको जानना है, गुरु इतनी मात्रा में उसको जना देता है, वो है करुणानिधान का सुजान स्वभाव।

दूसरे दो शब्द। करुणानिधान 'शील' को जाननेवाला होता है। बुद्धपुरुष सदैव करुणानिधान होता है, याद रखे। लेकिन गंगासती उसको बुद्धपुरुष कहती है, उसको करुणानिधान कहती है जो शीलवान है -

शीलवंत साधुने वारेवारे नमीए पानबाई!
जेनां बदले नहि व्रतमान रे;
चित्तनी वरती जेनी सदाय निरमळी,
जेने मा'राज थया मेरबान रे ...

शीलवंत हो; करुणानिधान शीलवान होता है। ये उनका स्वभाव है। और करुणानिधान वो है जो 'स्नेह' को जानता हो। कई लोग आप दिल से स्नेह प्रदान करो लेकिन वो न जानने के कारण वो स्नेह की कदर नहीं कर पाएगा।

अब, 'मानस' और मानसेतर ग्रंथों में जहां-जहां हनुमानजी को करुणानिधान कहा, शंकर को करुणानिधान कहा, रामजी को करुणानिधान कहा, तब इन व्यक्तित्व को सन्मुख करके प्रणाम करते हैं उसमें सुजानता, शीलवानपना और स्नेह का भरपूर ज्ञान दिखता है। तो, पांच बार तुलसी ने 'करुणानिधान' शब्द का प्रयोग किया है उसमें तीन में जानकी केन्द्र में है; एक में पादुका; एक में सुतीष्ण का प्यार। और भक्तिप्रवाह में तो परमात्मा के नाम को, रूप को, लीला को और धाम को भी करुणानिधान कहा है। बहुत विशाल फलक पर 'करुणानिधान' शब्द के तुलसी की कृतियों में संदर्भ बहुत मिलते हैं।

अब थोड़ा कथा का क्रम। भगवान राम के प्राकट्य के साथ माँ कैकेयी ने भी पुत्रजन्म दिया। सुमित्रा के वहां दो पुत्रों ने जन्म लिया। आनंद-उत्सव चौगुना हुआ। गोस्वामीजी कहते हैं कि एक महिने तक उत्सव चला। रात होती ही नहीं थी! अब बुद्धि में न उतरे, स्वाभाविक है। लेकिन परमानंद और ब्रह्मानंद में लीन होने कारण तीस दिन कैसे बीत गए, शायद अवधवासी को पता भी न रहा! फिर शंकरबाबा पार्वतीजी से बताते हैं कि कैसे वो भुशुंडिजी को लेकर ज्योतिष का रूप लेकर अयोध्या रामदर्शन के लिए गए थे। ज्योतिषविद्या के थ्रू शंकर प्रभु के दर्शन करते हैं। मेरा कहना इतना ही है कि कोई भी विद्या अच्छी है लेकिन विद्या की सार्थकता तब है जब वो विद्या हरिदर्शन के लिए उपयोग में आए। चारों भाई बड़े होने लगे। नामकरण संस्कार हुआ। वसिष्ठजी नामकरण करते हैं, 'महिपति! कौशल्या के अंक में जो सांवरा बालक खेल रहा है उसका नाम मैं 'राम' रख रहा हूं ताकि उसका नाम जो लेगा उसको जगत में सदैव विराम मिलेगा, आराम मिलेगा, विश्राम मिलेगा।' जो दुनिया को विश्राम, आराम और विराम देगा उसका नाम गुरुदेव ने 'राम' रखा। राम के ही वर्ण के समान जिसका वर्ण है, शील भी मिलता है, वैसे कैकेयीनंदन के सिर पर हाथ रखकर बाबा वसिष्ठजी ने कहा कि ये बालक पूरी दुनिया को भर देगा, संतुष्ट कर देगा उनका नाम मैं भरत रखता हूं। सुमित्रा के दो पुत्र; जिस के नाम के सुमिरन से शत्रुता मिट जाएगी, द्वेष मिट जाएगा इस बालक का नाम मैं शत्रुघ्न रखता हूं। जो समस्त सद्गुणों के भंडार है, राम के अत्यंत प्रिय है, समग्र सृष्टि का शेषनारायण के रूप में जो आधार है, वसिष्ठजी ने उसका नाम लक्ष्मण रखा।

चारों भाईओं का नामकरण हुआ। मैंने कइ बार कहा है कि जो हरिनाम ले उसके लिए ये तीन नाम आवश्यक है। हम हरिनाम लें लेकिन 'भरत' शब्द याद रखें कि हम राम का नाम लेते हैं। हरिनाम लेते-लेते सबको भर दे, सबका पोषण करे, किसीका शोषण न करे। रामनाम की आड में हम समाज को लूटे ना, पुष्ट करे ये आवश्यक है। फिर शत्रुघ्न। हरिनाम लेनेवालों को चाहिए कि किसी से दुश्मनी न रखे। हमारे मन में किसीके प्रति दुश्मनी नहीं होनी चाहिए; चित्तवृत्ति वैरमुक्त हो। और हम पूरी दुनिया का आधार तो न बन पाए लेकिन जितने का आधार बन पाए, उदार बने। औदार्य किस बात का? औदार्य इस बात का कि मैं रामनाम ले रहा हूं और दूसरा शिवनाम ले रहा है, तो उस समय भी उदारता बर्तो कि शिवनाम भी उसीका नाम है। ये हरिनाम के उपासकों के लिए तीन सहायक सूचना।

नामकरण संस्कार के बाद चारों भाईओं का यज्ञोपवित संस्कार हुआ। और भारतीय परंपरा के अनुसार चारों भाई गुरु के आश्रम में विद्याभ्यास के लिए जाते हैं। यद्यपि राम को क्या पढ़ना कि जिसकी सांस में वेद है। लेकिन प्रभु ने दुनिया को बताया कि किसी गुरु के पास जाना आवश्यक है। गुरु के पास गए बिना विद्या नहीं प्राप्त होगी। इसलिए गुरुशरण आवश्यक है। गुरुद्वार गए। अल्पकाल में सब विद्या प्राप्त कर ली। जो विद्या प्राप्त की वो अपने जीवन में चरितार्थ करते हैं। फिर गोस्वामीजी प्रसंग मोड देते हैं और महर्षि विश्वामित्र का आगमन बताया।

महामुनि विश्वामित्र जप-तप करते थे। मारीच-सुबाहु अतिशय विघ्न डालते थे। एक बार विश्वामित्र को ग्लानि हुई कि कैसे पूरा होगा ये अनुष्ठान? ध्यान में बैठे थे। विश्वामित्र ने ध्यान में देख लिया कि ब्रह्म तो क्षत्रिय घर पुत्र बनकर बैठा है! विश्वामित्र ने सरजू के पावन जल में स्नान किया। और भूप दरबार में पहुंच गए। महाराज दशरथ ने स्वागत किया। विश्वामित्र ने भोजन किया इतने में चारों भाई आए। विश्वामित्र के पास आकर राम-लक्ष्मण ने पैर छुए। विश्वामित्र ने देखा, स्तंभित हो गए! विश्वामित्र ने मांग रखी है कि असुर मुझे सता रहे हैं, तुम्हारे पुत्र दो। ममतावश महाराज दशरथजी मना करते हैं। लेकिन वसिष्ठजी ने सब संदेह हटा दिए और राम-लक्ष्मण देने के लिए राजा तैयार। माता के आशिष लेकर दोनों भाई महामुनि विश्वामित्र के संग ऋषिकार्य करने के लिए यात्रा आरंभ करते हैं। रास्ते में ताडका को निर्वाणपद प्रदान किया और आश्रम में पधारे।

भगवान राम-लक्ष्मण दूसरे दिन विश्वामित्र से आग्रह करते हैं कि आप यज्ञ आरंभ करो। यज्ञ आरंभ होता है। मारीच को बिना फने का बान मारकर सतजोजन दूर फैंक दिया और सुबाहु को अग्नि के बान से भस्म कर दिया। बाद में विश्वामित्रजी कहते हैं, जनकपुर में एक यज्ञ हो रहा है, यदि आप चाहे तो मैं ले चलूं। धनुषयज्ञ की बात सुनते ही भगवान राम हर्षित होकर मुनिगणों के साथ चल पड़ते हैं। रास्ते में अहल्या का उद्धार होता है। राम का अवतारकार्य आगे बढ़ रहा है। जो उपेक्षित है उसको आदर देने के लिए प्रभु चलते-चलते गये। जो जीवन की आशा खो बैठी थी ऐसी एक महिला अहल्या का भगवान राम ने चरणरज के दान से उद्धार किया। अहल्या के उद्धार के बाद भगवान आगे बढ़े। गंगाजी में स्नान किया। फिर भगवान जनकपुर पहुंचे है। जनकराज ने स्वागत किया। और अयोध्या के राजकुमार आए है, इसलिए विश्वामित्र आदि मुनिगण और राजकुमारों को 'सुन्दरसदन' नामक एक हवेली में ठहराते हैं। सबने दोपहर का भोजन किया और सबने विश्राम भी किया। अब आप भी भोजन करे और विश्राम करे।

‘करुणानिधान’ बड़ा वैश्विक-त्रिलोकी शब्द है

मानस-करुनानिधान : ७

कथा के आरंभ में विषयप्रवेश हो इससे पूर्व, आज विश्ववंद्य गांधीबापू का जन्मदिन है, मैं इस विश्ववंद्य महामानव को मेरी व्यासपीठ से नमन प्रेषित करता हूं। हम सब मिलकर आज के अहिंसादिन के अवसर पर हमारी श्रद्धा समर्पित करें। साथ-साथ कद में छोटे, विचार में विराट ऐसे एक बार के भारतीय सार्वभौम संघ के प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्रीजी का भी आज जन्मदिन है। मैं उस साधुचरित प्रधानमंत्री की चेतना को भी नमन करता हूं। गांधी अभी भी प्रस्तुत है, रहेगा क्योंकि सत्य कभी पुराना नहीं हो सकता। और गांधी ने सत्य पकड़ा था।

‘मानस-करुनानिधान’ की प्रधान चर्चा इस कथा में हो रही है। ‘करुणानिधान’ के कितने संदर्भ है! यद्यपि ‘रामचरित मानस’ में ‘करुनानिधान’ मूल शब्द पांच ही बार है। लेकिन ‘करुना’ शब्द तो कई बार है। ‘करुनाऐन’, ‘करुनासिंधु’, ‘करुनासागर’, ‘करुनाभवन’, ‘करुनाकर’ कई बार है। और ये जो ‘करुनानिधान’ शब्द है उसमें भी मूल तत्त्व तो करुणा ही है। उसकी प्रधान रूप में चर्चा हो रही है। हमारे बरोडावाले हरीशभाई ने बहुत मेहनत करके ‘करुना’ शब्द निकालकर पूरा लिस्ट भेजा है। उसमें मैं देख रहा था। चंद मैंने मार्क कर लिया। ‘रामचरित मानस’ के आरंभ में पांच सोरठें है, उसमें शिवजी के बारे में एक सोरठा है-

कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन।।

इसमें ‘करुणानिधान’ की एक सटिक व्याख्या भी हमें प्राप्त होती है। किस बुद्धपुरुष को हम ‘करुणानिधान’ कहेंगे? ये ‘करुणानिधान’ बड़ा वैश्विक-त्रिलोकी शब्द है। यहां ऐसे बुद्धपुरुष की यदि हम बात करें तो उसके देह का थोड़ा परिचय दिया है। जो करुणानिधान बुद्धपुरुष होता है, उसका देह कैसा होता है? यहां कोई रंग की बात नहीं है। यद्यपि शंकर गौर है। वो कहते हैं कि ‘कुंद इंदु सम देह।’ कैसा शरीर है? शिव का देह चंद्रमा के समान है। और कभी भी श्रेष्ठतम श्रद्धेय के परिचय में उनके दैहिकरूप का परिचय दिया जाता है तब बहुधा चंद्र के साथ उनकी तुलना होती है। यद्यपि चंद्रमाँ में कलंक है। स्वयं तुलसीदास ने ‘मानस’ में चंद्रमाँ के बहुत से दोषों का निरूपण किया है। लेकिन जब तुलसीजी भरतजी को चंद्र कहते हैं -

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा।
रघुबर किंकर कुमुद चकोरा।।

‘हे भरत, तुम चंद्र हो। एक ऐसा चंद्र तुम हो कि ‘गुर अवमान दोष नहिं दूषा।’ उस चंद्र को राहु ग्रसता है लेकिन हे संत, तेरे यशचंद्र को दुनिया में कोई राहु ग्रस नहीं सकता। जब भरतजी राम को मनाने चित्रकूट जाते हैं; भरद्वाजजी के आश्रम में जब निवास करते हैं; मुनिमंडलों ने भरत के चेहरे को देखा, तब ये निर्मल चंद्र का वर्णन एक ऋषि कर रहा है। लेकिन ऋषि सावधान भी है कि चंद्र कहूं तो न होते हुए भी दुनिया को तो कलंक दिखाई देगा! यद्यपि उज्ज्वलता को प्रकाशित करने के लिए पीछे की बात काली होनी ही चाहिए। तो वो ही भरद्वाजजी अपने आश्रम में भरतजी को कहते हैं -

तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु।।

देखो, ऋषि तराजू लेकर बैठा है। ‘भरत, तुम्हारे लिए ये कलंक है।’ और फिर कहते हैं, तुम्हारे लिए ये विशेष यश की बात है। भरत को कलंक लगा है। कौन-सा कलंक? भरत के कारण राम का वनवास हुआ। यद्यपि भरत कारण नहीं है लेकिन समाज के कुछ लोग ऊंगली उठा रहे थे कि माँ की बातों में भरत की सहमती होगी। लेकिन वो ही भरत सब को साथ में लेकर चित्रकूट राम का साक्षात्कार कराता है, तो वो उनका यश भी है। मूल में तो ये पूरी योजना राम की है। क्योंकि राम चाहते थे कि यही काले रंग में मेरे भरत का निर्मल चंद्र दिखाई दे। एक विशेष यश विश्व के सामने आ जाए। आपके कलंक की ये बात हमारे लिए उपदेश है। आप सब को ले जा रहे हैं। जो तुम्हारे अपवाद गाते थे वो भी आज खुश है कि हम को राम के दर्शन हो जाएंगे। ये यश जो है वो हमारे लिए उपदेशात्मक है। तो, वहां जो कलंक की बात आई है चंद्र में वो ये है। लेकिन तत्त्वत: तो कहना है कि तुम्हारा यशचंद्र ऐसा है कि ये तो पीछे का काला रंग ओर प्रकाशित करे वस्तु को।

तो, करुणानिधान का देह ‘कुंद इंदु सम देह।’ शारदीय चंद्रमाँ के समान उसका देह है। कलंक पृष्ठभूमि हो और जिसका यश विश्व को राम की प्राप्ति करा दे ऐसा देहधारी कोई संत करुणानिधान की परिभाषा है। गोस्वामीजी करुणानिधान की एक और चर्चा करते हुए भी लिखते हैं, करुणानिधान वो है कि एक बार करुणा करके ‘जेहि जन पर ममता अति छोहु।’ करुणानिधान को विश्व के उपर एक बार ममता लग गई तो फिर कभी भी क्रोध न करे उसका नाम ‘करुणानिधान।’ बुद्ध को आप क्रोध करते नहीं देख पाओगे। महावीर को आप नहीं देख पाओगे। एक बार करुणा की फिर क्रोध न करे। दोनों नहीं हो सकता। या तो करुणा करो, या तो क्रोध करो।

एक व्याख्या करुणानिधान की ये भी है। परमात्मा का स्वभाव करुणामय है।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ।
प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ।।
करुनामय रघुनाथ गोसाँई।
बेगि पाइअहिं पीर पराई।।

भगवान करुणानिधान होने ने कारण, करुणामय होने के कारण उसको दूसरों की पीड़ा जल्दी महसूस होती है। खुद की पीड़ा तो हमें महसूस होती ही है, स्वाभाविक है लेकिन जिसको कोई दूर-दूर पीड़ित है उसकी भी पीड़ा महसूस हो। जैसे ठाकुर रामकृष्ण के बारे में कहा जाता है कि नौका में जा रहे थे। दूसरी नौका में एक व्यक्ति अपनी बीबी को मार रहा था। ठाकुर अपनी भावसमाधि से बाहर आये। सामने की नाव में वो आदमी अपनी बीबी को कोडा मार रहा है। कोडा वहां लगता है और ठाकुर यहां चिल्लाते हैं! करुणानिधान को दूसरों की पीड़ा जल्दी महसूस होती है। ये उनका स्वभाव होता है। अब में

आपसे ये पूछुं कि जिसका स्वभाव ऐसा हो कि दूसरों की पीड़ा खुद अनुभवे, वो आदमी कभी भी दूसरों को पीड़ा दे सकता है? वो एक दिन मैंने हमारे प्रधानमंत्री के माँ के बारे में निवेदन आया था उस पर कुछ कहा था। आज मुझे लगता है कि मेरे उस निवेदन से कुछ लोगों को पीड़ा हुई है! तो, मैं मेरी साधुता से क्षमाप्रार्थी हूं। साधुता से क्षमाप्रार्थी हूं, डर से नहीं। सब क्षेत्र के लोग मेरे समादरणीय है। मैं पूरे जगत को कहता हूं, विश्व में मैं किसी को नाराज करने या किसी का नुकसान करने पैदा ही नहीं हुआ। मुझे सत्य जितना है इतना लेकर घूम रहा हूं, दूसरों को प्रेम देता हूं और विश्व को करुणा बांटनेवाला आदमी हूं। मेरे पास सब समादरणीय है। मुझे किसी से कोई लेना-देना नहीं है। और पूरी दुनिया जानती है कि मैं सबसे प्रमाणित डिस्टन्स किए हुए हूं।

तो, करुणानिधान की चर्चा चल रही है। जिस पर करुणानिधान की करुणा एक बार हो जाती है वो

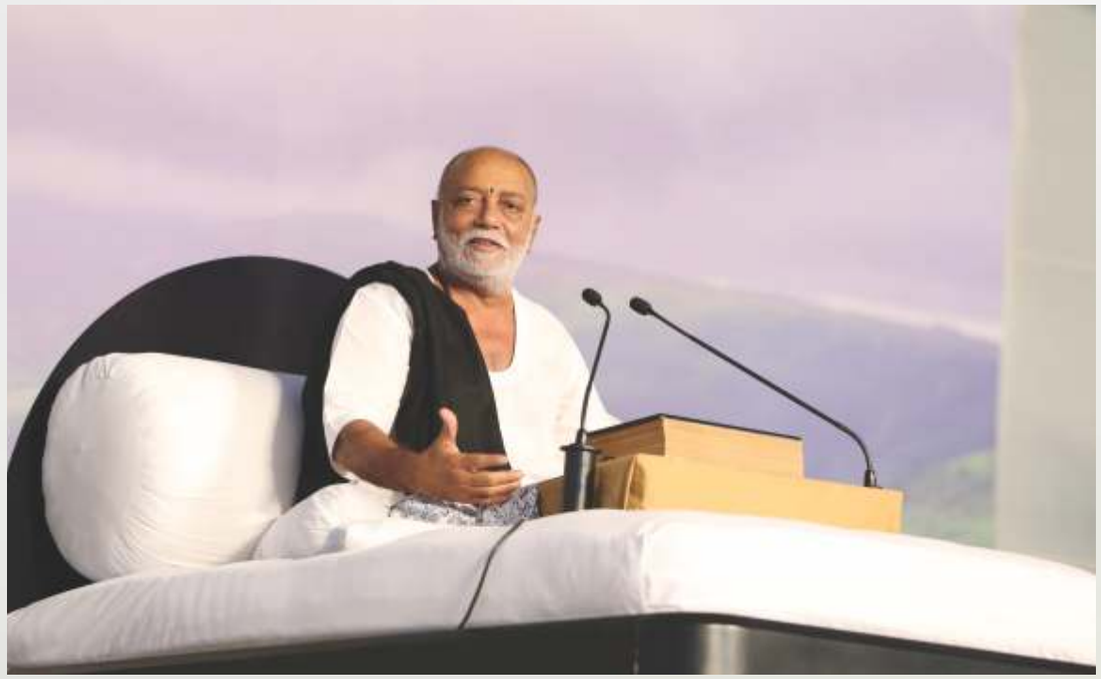

कभी क्रोध नहीं कर सकता। करुणावान खुद सह लेगा। तो प्यारे सूत्र है, उस पर हम आगे बढ़ें।

करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता।।

करुणानिधान वो है जो सुखसागर है। करुणानिधान को कोई दु:खी नहीं कर सकता। दूसरों की पीड़ा से पीड़ा हो वो एक बात और है। करुणानिधान सुखसागर होता है। मैं आपके सामने विचार रखूं कि आप सुबह में उठे तो निर्णय करो कि कुछ भी हो जाए, मुझे आज सुखी ही होना है। तो दुनिया में कोई माई का लाल आप को दु:खी नहीं कर सकता। लेकिन सुबह से ही आप आशंकित हो अरे! क्यों? मैं सुखराशि भगवान का अंश हूं।

इस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।

परमात्मा के अंश होने कारण, हम भी उस परम प्रसन्नता के अंश होने के कारण सुखराशि है। लेकिन सुबह से ही दु:ख का संकल्प करके उठते हैं! प्रसन्नता और सुख पदार्थ आधारित नहीं होते, आंतरिक संकल्प के आधारित होते हैं। पदार्थ तो कई के पास होता है, तो कहां सुखी है? थोड़े दिन प्रयोग तो करो। तो, बुद्धपुरुष को हम प्रसन्न देखते हैं। बुद्ध, महावीर, कबीर, मीरां। मीरां के बारे में तो लोग कहे कि-

मीरां कहे मैं भई बावरी,
सांस कहे कुलनाशी रे।

लेकिन वो तो मुस्कुराती रही! और हमारा भगुभाई रोहडिया तो कहता था कि 'राणाजीने कहेजो, पाछां झेर मोकले!' आज एक हमारे गुजरातीभाई ने पूछा है कि 'मीरां दूसरी बार जहर मांग रही है वो अहंकार नहीं है क्या? ये पड़कार नहीं है? साधु में ये गर्जना क्यों?' ये अच्छा मुद्दा उठाया। नहीं, मुझे ये नहीं लगता। मीरां को जहर इतना अच्छा लगा होगा कि कहा, राणा! जहर बहुत अच्छा लगा, थोड़ा और दो ना! तो भगुभाई की ये पंक्ति बड़ी प्यारी है-

राणाजीने कहेजो, पाछां झेर मोकले।
मीरांबाई करे छे पोकार,
झेरने जीरववा जीवण मारो आवशे।

ये तो विशेष स्वाद के लिए निमंत्रण था कि और परोसो। तो, 'करुना सुख सागर सब गुन आगर।' करुणानिधान की दूसरी व्याख्या मिल सकती है कि करुणावान सभी गुणों का गागर होता है। दृष्टि होनी चाहिए। दृष्टि यदि गुणग्राह्य है तो दुर्जन से दुर्जन से भी हम अच्छे गुण ग्रहण कर लेते हैं। और दृष्टि ही ठीक न हो तो गुणभंडार से भी हम कुछ न कुछ कमियां खोज लेते हैं। लेकिन करुणानिधान बुद्धपुरुष गुणों का समुद्र होता है, ऐसी भी व्याख्या 'मानस' देता है।

करुणानिधान की एक ओर व्याख्या 'मानस' में मिलती है कि करुणानिधान बुद्धपुरुष वो है कि कभी भी आश्रित के हृदय में गर्व का अंकुर फूटे तो-

करुनानिधि मन दिख बिचारी।
उर अंकुरेउ गरब तरु भारी।।

अपने आश्रित के हृदय में गर्वांकुर जो फूटते हैं उनको 'बेगी'; मैंने कल कहा कि बुद्धपुरुष बैठता है आराम से लेकिन उठता है जल्दी कि मेरा आश्रित पुकार रहा है और मैं देर से पहुंचूं? साहब, अध्यात्मजगत की घटनाएं है नाभाजी की परंपरा में कि वेपारी का जहाज आंदोलित हुआ है। फिर जब गुरु को याद किया और यहां वो पंखा चल रहा था और यहां वो पंखा उसने दूसरी ओर वो कर दिया और कहते हैं, तूफ़ान समाप्त हो गया! लगता है चमत्कार लेकिन सहाय तो हम सब अनुभव करते हैं कि मिलती है। वसीमसाहब ने उस दिन शे'र दोहराया था कि चारों और जब वो होता है तो तब किसी के कारण उजाला होने लगता है। भरोसा पूर्णत: होना चाहिए। दृढ़ भरोसा हमें बहुत निर्भार करता है। कल जो ओसमाण ने एक गज़ल गाई-

तुम्हारे बगैर मुकम्मल जिन्दगी न हुई।
खुशी का नाम सुना था, खुशी न हुई।
-जिगर मुरादाबादी

लेकिन हरिनाम का, बुद्धपुरुषों का पूर्ण दृढ़ाश्रय करो तो इस गज़ल में एक फेरफार करना, 'तुम्हारे साथ जिन्दगी मुकम्मल हो गई।' हे बाप! तू मिला तो जीवन पूरा हो गया! और खुशी का नाम सुना था लेकिन अब तो परिपूर्ण खुशी हुई। तो, सवाल है पूर्ण भरोसा।

कई गुरुओं के पास भटकता हुआ एक शिष्य होने के लिए बहुत आतुर, बेचारा पचास साल भटका। अब गड़बड़ क्या होती थी कि जिसके पास आए वो गुरु उसे फिट नहीं होता था! एक गुरु केवल हंसता ही था! एक गुरु के पास गया तो वो तो बिलकुल गंभीर! तीसरा तो बिलकुल उपवास करता था! चौथा सब भोजन कर रहा है!! साठ साल हो गई। मृत्यु नजदीक आई। उसको लगा कि परफेक्ट गुरु मिलता नहीं है, अब करूं क्या?

बिना गुरु मर जाऊँ वो भी ठीक नहीं है। अब जो मिले उसे गुरु कर लूं। तो फ़िर एक के पास गया और कहा कि तुम जो कहो वो लेकिन मुझे अब शिष्य बनाओ। और जैसे सब बौद्धिक्ता और प्रश्न छोड़कर चरण पकड़ लिया और आंख ऊंची की तो जो खाता दिखाई दिया था वो ये था! जो उपवासी दिखाई दिया था वो भी यही था! जो हंसता था वो भी यही था! लेकिन कब हुआ? जब कुछ भी हो, अब नहीं मुझे नापना-तोलना ऐसा महसूस हुआ। 'विनय' का पद है-

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग,
केहि अति दीन पियारे।।

'विनय' का एक पद है-

हे हरि! कवन जतन सुख मानहु ।
ज्यों गज-दसन तथा मम करनी, सब प्रकार तुम जानहु ।।

जैसे हाथी के दांत होते हैं; दिखनेवाले दूसरे, अंदरवाले दूसरे, वैसे प्रभु! मेरी करणी हाथी के दांत जैसी है। हे हरि, मुझमें तो अपार अवगुण है लेकिन तू तेरे गुण का स्मरण करना। एक बात कहूं? भगवान राम करुणानिधान है लेकिन करुणानिधान राम के स्वभाव को कितने लोगों ने जाना? प्रश्न यही है। प्रभाव दूर से जाना जाता है, स्वभाव बहुत संनिकट रहने के बाद जाना जाता है। रामजी वीर है, धर्मवीर है, बलवीर है, ये तो सब जानते हैं लेकिन उनकी करुणामयी जो प्रकृति है वो कितने जान पाए? 'सुन्दरकांड' में भगवान कहते हैं-

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ ।
जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।।

भगवान कहते हैं, हे सखा! मेरा स्वभाव तुम्हें बता दूं। कोई-कोई जानता है इनमें पहला नाम दिया है भुशुंडि। मेरे स्वभाव को कागभुशुंडि जानता है। दूसरा, शिव जानता है। तीसरा गिरिजा जानते हैं। और फ़िर-

जौं नर होइ चराचर द्रोही ।
आवै सभय सरन तकि मोही।।

तुलसीदासजी कहते हैं, मेरा स्वभाव क्या है कि कैसे भी हो, एक बार मद-मोह आदि छोड़कर भी भयभीत होकर मेरी शरण में आए तो मैं उसे सद्य साधु बना देता हूं ये मेरा स्वभाव है। लेकिन यहां ये तो राम का स्वभाव है; साधु स्वभाव नहीं है। साधु तो राम से भी बड़ा होता है। ये तो राम का स्वभाव है कि-

तजि मद मोह कपट छल नाना ।
करउँ सद्य तेहि साधु समाना ।।

दोनों चोपाई में भगवान कहते हैं कि जो व्यक्ति चराचर का द्रोह कर चुका हो लेकिन मेरी शरण में भयभीत होकर एक बार जो आ जाए, कपट-मद आदि सब छोड़कर आ जाए उसको मैं साधु बना देता हूं। ये स्वभाव राम का है, साधु का नहीं है। साधु तो कहता है, मेरे पास आओ तब भयभीत होकर मत आओ, अभय होकर आओ। राम भयभीत करना चाहते हैं, साधु अभय करना चाहता है। जो हो, आ जा! और राम शर्त लगा रहे हैं, मद-मोह छोड़कर मेरे पास आए। साधु कोई शर्त नहीं लगाता। वो तो कहता है, जो है सब लेकर आ। किसी बुद्धपुरुष के पास जाने में सभीत होने की भी जरूरत नहीं है।

तो, परमात्मा का स्वभाव कोई-कोई जानता है। भगवान के स्वभाव को एक भरत जानते हैं। 'मैं जानहुँ निज नाथ सुभाऊँ।' हे प्रभु! मैं आपका स्वभाव जानता हूं। आपको अपराधी के प्रति भी क्रोध नहीं आता। 'मानस' में बृहस्पति परमात्मा के स्वभाव को जानते हैं-

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ।
निज अपराध रिसाहिं न काऊ ।।
जो अपराध भगत कर करई ।
राम रोष पावक सो जरई ।।

तो, साधक के हृदय में जब कोई गर्व फूटता है तो करुणानिधान बुद्धपुरुष उसे धीरे-से उखेड़ देता है। अब-

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन।।

वो केवट चरण धोने के लिए कैसे अटपटे बोल बोल रहा है! लेकिन परमात्मा करुणानिधान होने के कारण किसी भी घटना को हंसते-हंसते एकदम सरलता से वो कर ले, उसके लिए भी यहां 'करुनानिधान' शब्द का प्रयोग आया।

करुणानिधान बुद्धपुरुष वो है कि जिस तत्त्व को वेद न पहचान सके। जो परमतत्त्व मुनिओं के मन को भी बहुत अगम है, ऐसा कोई बुद्धपुरुष छोटे-से छोटे आदमी की बोली को ऐसे सुनता रहता है जैसे बाप अपने बच्चे की बोली को सुनता है। करुणानिधान का ये एक लक्षण है-

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन।।

कहां ये कौल-किरात, भील और भगवान इनके साथ ऐसे बात कर रहे हैं। निकट आकर बातें करते हैं; ऐसे हिल-मिल जाते हैं। ये करुणानिधान का लक्षण है। 'लंकाकांड' में तो आप पाते हैं कि भगवान असुरों का नाश करते हैं। विजय हो गया फिर इन्द्र आया। और इन्द्र ने प्रभु से कहा कि आप कोई सेवा दो। तो भगवान ने कहा कि देवराज, अमृत की वर्षा करो। और ये सब जो मेरे बंदर-भालु मर चुके हैं उसको फिर जीवित कर दो। देवराज इन्द्र ने अमृत की वर्षा की। अमृत की वर्षा सार्वभौम थी तो राक्षस पर भी हुई लेकिन राक्षस जीवित नहीं हुए! क्यों? भगवान कहना ये चाहते हैं कि खराब संस्कार एक बार खतम हो जाए, फिर उसको जीवित नहीं करना चाहिए। लेकिन बंदर-भालु शुभ संस्कार है, उसे बार-बार जीवित करना चाहिए। और फिर विभीषण आया कि देवराज ने इतनी सेवा की तो मुझे भी कोई सेवा सोंपो। तो कहा कि तू एक काम कर। विमान में मणि और अंबर-वस्त्र भरकर विमान से तू वर्षा कर। सब बंदर-भालु मणिओं की माला और वस्त्र पहनकर राम के पास जाते हैं और कहते हैं, 'प्रभु, आप एक बार बोलो ना, मैं कैसा लगता हूं?' ये करुणानिधान है; इसके साथ भी बात करे! फिर आगे-

प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि।।

परमात्मा जो शरण में जाता है उनको रख लेते हैं। पक्षपातमुक्त जिसका जीवन हो। और कोई भी, जिसको देखने की चाह सबको होती है, निर्णय करना ये बुद्धपुरुष करुणानिधान हो सकता है। 'प्रगट भए सब जलचर वृंदा', राम की करुणा को देखने के लिए सब जलचर

करुणानिधान को दूसरों की पीड़ा जल्दी महसूस होती है। ये उनका स्वभाव होता है। अब में आपसे ये पूछुं कि जिसका स्वभाव ऐसा हो कि दूसरों की पीड़ा खुद अनुभवे, वो आदमी कभी भी दूसरों को पीड़ा दे सकता है? वो एक दिन मैंने हमारे प्रधानमंत्री के माँ के बारे में निवेदन आया था उस पर कुछ कहा था। आज मुझे लगता है कि मेरे उस निवेदन से कुछ लोगों को पीड़ा हुई है! तो, मैं मेरी साधुता से क्षमाप्रार्थी हूं। साधुता से क्षमाप्रार्थी हूं, डर से नहीं। सब क्षेत्र के लोग मेरे समादरणीय है। मैं पूरे जगत को कहता हूं, विश्व में मैं किसी को नाराज करने या किसी का नुकसान करने पैदा ही नहीं हुआ।

प्रगट हुए। करुणानिधान की एक ओर व्याख्या मिलती है-

अकल अगुन अज अनघ अनामय।
अजित अमोघसक्ति करुनामय।।
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिध दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे।।

ये भी करुणानिधान का लक्षण माना जाता है।

भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन।।

बाप, करुणा संकीर्ण नहीं हो सकती। मैंने एक बार बात की कि खदान को पता नहीं होता कि मुझमें सोना कितना है। सागर को पता नहीं कि मुझमें रत्न कितने हैं। वैसे करुणानिधान को पता नहीं कि मुझमें करुणा कितनी है।

कथा के प्रसंग में कल देखा कि जनकपुर में विश्वामित्र आदि मुनिवृंद के साथ राम-लक्ष्मण 'सुंदरसदन' में ठहरे हैं। दोपहर भोजन करके सबने विश्राम किया था। पता लग गया था जनकपुरी में तो भगवान की उम्र के जनकपुर के किशोर वय के बच्चें फ़ाटक को पकड़कर 'ये कौन आये हैं दो राजकुमार?' उसके दर्शन के लिए आतुरता से कोई उपर चढता है, कोई गिर जाता है! तब इन बालकों के मनोभावों को पहचाननेवाले अंतर्यामी राम ने विश्वामित्र के पास जाकर एक प्रस्ताव रखा कि लक्ष्मण नगर देखना चाहता है। दोनों भाई फाटक के बाहर आए। सब अपनी-अपनी रुचि के अनुसार राम-लक्ष्मण को अपने आंगन में लाते हैं। मेरी व्यासपीठ ने कई बार कहा कि नगर के बूढ़े-बुज़ुर्ग भी बाहर आ गए। कतार में रास्ते पर खड़े हैं लेकिन न कुछ पूछते हैं, न कुछ जानना चाहते हैं। आकर्षण तो होता है। लेकिन वो कुछ जानना नहीं चाहते थे क्योंकि वो समझ बैठे थे कि हम सब जान चुके हैं! और सबसे बड़ी मुश्किल ये है कि जब आदमी अपनेआप समझ लेता है कि मैं जान गया हूं, तो खतरा है। लाभ तो ले रहे थे समवयस्क। गोस्वामीजी कहते हैं कि मिथिला की अटारियों में मिथिला की महिलाएं भगवान राम का दर्शन मर्यादा से कर रही थी। मैंने संतों से सुना कि बालकलोग भगवान के श्रीअंग को स्पर्श करके अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपने घर में ले जाते थे; बुज़ुर्ग लोग केवल देखते रहते थे और मिथिला की महिलाएं दर्शन करती हुई भाव में डूबी हुई है और परिचय प्राप्त कर लेती है।

दौनों भाई लौट आए। गुरु को प्रणाम किया। संध्यावंदन और रात्रिभोजन होता है। फिर विश्राम हुआ। सुबह गुरुपूजा के लिए पुष्प आदि सामग्री लाने के लिए गुरु की आज्ञा से दोनों भाई जनक की पुष्पवाटिका में पुष्प चुनने जाते हैं। दोनों भाई पुष्पवाटिका में घूम रहे हैं उसी समय जानकीजी का प्रवेश होता है। सीताजी के संग अष्ट सखियां है। गौरी की पूजा के लिए आये हैं। एक सखी आई, जो बाग देखने में पीछे रह गई थी। इतने में वो राम को देख लेती है। तुलसीजी यहां संकेत करना चाहते हैं कि देवता केवल मंदिर में हीं नहीं होते, देवता तुम्हारे इधर-उधर घूमते हो तो उसे चूके ना। और इस रहस्यमय सखी ने दोनों भाईयों को देख लिया और इतनी प्रेम में डूब गई कि दौड़कर वो सीता के पास आकर बोलने लगी, वो दो राजकुमार बाग देखने आए हैं। जानकी को एकदम अभिलाषा होती है रामदर्शन की और जो सखी खबर देती है उसीको आगे कर दिया। वो सखी अंततोगत्वा राम-लक्ष्मण का दर्शन करा देती है और बीच में से हट जाती है। मैंने संतों से जो कथा सुनी इनमें इस पूरे प्रसंग का ऐसा ही अर्थ निकाला गया कि जिसको हरिदर्शन करना है उसको सबसे पहले बाग में जाना चाहिए। जानकी और सखियां बाग में गये। बाग क्या है?

संतसभा चहुँ दिसि अवँराई।

संत की सभा में जाना चाहिए। संतसभा बाग है ऐसा तुलसी कहते हैं। तो, हरिदर्शन करना हो तो पहले संतों के पास जाना चाहिए। अथवा तो बाग मानी आराम। हरिदर्शन के लिए उसके पास पहले जाना चाहिए जहां जाने से हमें आराम प्राप्त हो। बाग में जाना मानी सत्संग में जाना। गुजराती में कहते हैं-

शांति पमाडे तेने संत कहीए।

फिर सीताजी ने सरोवर में स्नान किया। हरिप्राप्ति का दूसरा लक्षण ये बताया कि स्नान किया। तुलसी ने 'मानस' में संत के हृदय की सरोवर के निर्मल जल के साथ तुलना की है। जल में स्नान करना मानी संत के हृदय में डूबकी लगाना। सत्संग तो करे लेकिन सत्संग के बाद हमारी क्रिया, व्यवहार ऐसा हो कि संत के हृदय में हमारा स्थान हो। मतलब कि कोई साधु हमें याद करे। कोई आपको कहे कि फलां बुद्धपुरुष आपको याद करते थे, उसी दिन घरमें उत्सव मनाना! कोई वरिष्ठ की स्मृति में रहना क्या नसीब होता है! संत के हृदय में जगह प्राप्त करना वो हरिदर्शन का दूसरा लक्षण। फिर जानकीजी गौरी के मंदिर में गई। गौरी मानी श्रद्धा। श्रद्धा के सन्मुख जाना। पूजा करना अनुराग से।

जानकी सुभग वरदान मांग ही रही थी उसी समय वो सखी आती है। इसका मतलब ये हुआ कि हम सत्संग करे, संतप्रिय हो जाए और श्रद्धा के सन्मुख हो जाए तो क्रम में किसी न किसी गुरु को आना ही पड़ेगा। गुरु केवल पूज्य ही न रहे, प्रिय भी होना चाहिए। इसी तरह जीवन की यात्रा जिसकी होगी वो पहुंच जाएगा। और ऐसा बुद्धपुरुष भी राम के निकट लाकर वो बीच में से हट जाएगा। स्थूल रूप में हट जाएगा कि मैं भी अब बाधा न बनूं। मैंने उस दिन वक्तव्य दिया था तो उस दिन मुझे चिठ्ठी भी मिली थी कि बापू, एक ओर आप कहते हैं कि साधु साधन नहीं है, साध्य है। और एक ओर आप ये कहते हैं कि तसवीर भी हटा दो। तो हम क्या करें? इस तसवीर को मैं हटाना कहता हूं कि जो तसवीर तुम्हारा साधन बनती हो। तसवीर साध्य बनी हो तो जनम-जनम रखो। यदि वो तुम्हारा साध्य है तो ईश्वर को भी छोड़ दो। मैं नहीं कहता, सहजोबाई कहती है। बडी क्रांतिकारी महिला रही होगी कि कहा, मैं गुरु के समान ईश्वर को भी नहीं देखती। सहजोबाई कहती है, हरि तो अपने माया के बंधन में हमें बांध देता है। गुरु है जो हमें मुक्तता प्रदान करता है। 'गुर बिन भव निधि तरइ न कोई।' और बड़ी क्रांतिकारी पंक्ति है, ये कहते हैं 'जौं बिरंचि संकर सम होई।।' वो शंकर-ब्रह्मा-विष्णु क्यों न हो, बिना गुरु कोई तैर नहीं सकता।

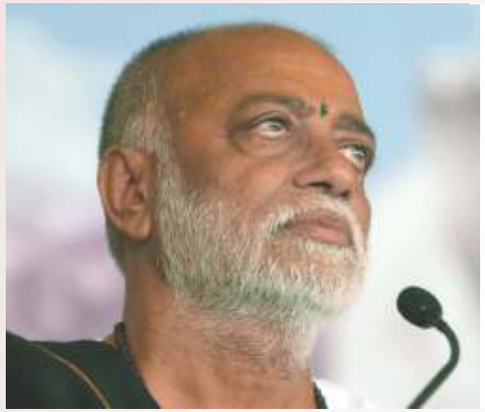

कृपा आंख है, करुणा आंसू है

मानस-करुनानिधान : ८

'मानस' अंतर्गत दो पंक्ति लेकर हम 'मानस-करुनानिधान' की संवादी चर्चा विशेष आत्मजागरण के लिए कर रहे हैं। भरतजी को लगा कि परमात्मा की चरणपादुका जो करुणानिधान की है, मानो चौदह साल तक अयोध्यावासीओं के प्राणों के रक्षक के रूप में मेरे साथ आ रही है। वर्ना अवध वियोग में जीवित नहीं रह सकते। फिर हमने जो दूसरी पंक्ति ली है उसमें परमात्मा की एक बानी, मानी उसका एक सहज स्वभाव कि जिसको मेरे सिवा किसीकी भी गति नहीं है वो मुझे अत्यंत प्रिय है। दोनों पंक्ति में 'करुनानिधान' शब्द अंकित है और इन शब्दब्रह्म को केन्द्र बनाकर हम इस नवदिवसीय रामकथा में संवाद कर रहे हैं।

बहुत-सी जिज्ञासाएं है। एक तो कल एक चिठ्ठी मुझे मिली थी कि 'बापू, जीवन कितने प्रकार के होते हैं?' कई प्रकार के हो सकते हैं। ऐसी जिज्ञासा का शायद पहले भी संवाद हुआ है लेकिन व्यासपीठ से बात हो रही है तो मैं इतना कहना चाहूंगा कि चार-पांच प्रकार के जीवन प्रसिद्ध है। एक जिंदगी होती है, जिसको हम आज की भाषा में पर्सनल लाईफ़ कहते हैं, व्यक्तिगत जीवन। सबका अपना जीवन होता है। और संसार का संस्कारजगत ये कहता है कि जिसकी जो व्यक्तिगत जिंदगी हो वो उनके मुबारक रहने देनी चाहिए। जैसे कि 'रामचरित मानस' में आप जानते हैं कि 'अरण्यकांड' के आरंभ में लक्ष्मणजी फल-फूल लेने गये हैं। एकदम एकान्त है सीता-रामजी के पास। पवित्र मंदाकिनी के तट पर स्फटिक शिला पर दोनों विराजित है। जानकीजी के पवित्र चरण गंगा के पवित्र जल में एकरूप हो रहे हैं। इस पावन अवसर को देखकर भगवान राम कुछ फूल चुनकर एक माला बनाते हैं। कुछ कंगन बनाते हैं। बाजुबंध बनाते हैं और जानकीजी को ये अपने हाथों से अलंकृत करते हैं। उसी समय देवराज इन्द्र का बेटा जयंत निकला और चित्रकूट आ गया और ये द्दश्य को देखा कि राम जानकीजी को शृंगार कर रहे हैं! राम तो विषयी लगता है! एक ओर उदासीन व्रत लेकर वनवास और एक ओर ऐसा विलास! उसके मन में ये बात बैठी नहीं। और वो कौए का रूप लेकर चित्रकूट में आता है और जानकी के चरण में चोंच मारकर भागता है। माँ के चरण से रक्तधारा बही। ये तुलसी है। संस्कृत ग्रंथ में तो रुचिभंग होता है। गोस्वामीजी का इरादा है कि इन्द्र का बेटा यदि चंचूपात करे किसी के पर्सनल जीवन में और वो भी राम-जानकी के जीवन में; तो भगवती के चरणों में ही कर पाएगा। तुलसी ने संमार्जन

किया है। ये संत का स्वभाव। फिर तो नारद के कहने से जयन्त माँ जानकी के चरणों में जाकर क्षमा मांगता है। भगवान दंड तो देते हैं और कौए की एक आंख वो कर दी। मानो, संतों ने अर्थ बताया कि तेरी द्वैत दृष्टि है, कृपया एक दृष्टि रख। और वो कौआ बना, इसका मतलब ये होता है कि दूसरों के व्यक्तिगत जीवन में जो चंचूपात करता है वो कभी हंस नहीं बन सकता, कौआ ही बन सकता है। तो एक लाईफ़ होती है सबकी पर्सनल लाईफ़। और किसीकी पर्सनल लाईफ़ में चंचूपात नहीं करना चाहिए ये 'मानस' की सीख है।

दूसरी लाईफ़ है फेमिली लाईफ़; एक पारिवारिक जीवन। व्यक्ति को मैं प्रार्थना करूं कि पारिवारिक लाईफ़ में सबके साथ रहकर सबको समय देना चाहिए। जहां तक संभव हो, भोजन और भजन साथ में हो। परिवार के सदस्य एक दूसरों को थोड़ा समय दे। हम वैसे तो समय देते हैं लेकिन महत्त्व का समय नहीं देते! क्या हम परिवार में रहते नहीं है? लेकिन जब महत्त्व का समय देने का वक्त आता है तब दूसरे बहाने के साथ हम निकल जाते हैं!

एक परिवार में एक बाप बीमार था। बेटा दफ्तर जाने के लिए निकला। बाप कभी न बोले लेकिन आज बोला, बेटा! आज तू दफ्तर न जा, मेरी तबियत मुझे ओर बिगड़ी हुई दिखती है। तो बेटे ने कहा कि ये बात तो ठीक है लेकिन आज मुझे बहुत आवश्यक काम है और जाना जरूरी है। हो सकेगा तो मैं जल्दी लौट आऊंगा लेकिन अभी जाना तो जरूरी है। और वो लड़का जाता है। उसने बाप को समय तो रोज दिया लेकिन महत्त्व का समय नहीं दिया! पारिवारिक लाईफ़ में व्यक्ति को सबको समय देना चाहिए। कभी शांति से घर में बैठकर आपस में शुभ वार्ता नहीं कर सकते? घर में विश्राम बढ़ेगा, और क्या? विनोबाजी कहा करते थे कि अब ये जो इक्कीसवीं सदी आएगी उसमें सामूहिक साधना की जरूरत है। और कथा सामूहिक साधना है; वर्ना कथा तो मैं अकेला भी गा सकता हूं। लेकिन क्यों सबके साथ बैठकर हम संवाद करें? ये सामूहिक साधना है।

तीसरी लाईफ़ होती है सोशियल लाईफ़, सामाजिक लाईफ़। किसी बुद्धिमान ने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। हमारा एक सामाजिक जीवन भी है। हम समाज में रहते हैं। ये जीवन भी निभाना पड़ता है। सामाजिक जीवन जब निभाना पड़े, व्यावहारिक जीवन जब निभाना पड़े तब प्लीझ, 'मानस' के आधार पर एक बात मैं आपसे संवाद के रूपमें कहूं, उपर से उदासीन रहो और भीतर से सिक्त रहो। तुलसीदासजी से किसीने पूछा कि साधु का आश्रम वन में होना चाहिए कि नगर में होना चाहिए? हमारी प्रचलित धारणा तो यही है कि साधु का आश्रम तो नगर से दूर ही होता है। लेकिन मैं आपसे पूछुं कि भरत का आश्रम कहां है? भरत का आश्रम चित्रकूट में था कि अयोध्या में था? राम का आश्रम तो चित्रकूट में था। भगवान राम का आश्रम वन में है। भरत का आश्रम कहां है? आप कहे कि नंदिग्राम। नंदिग्राम भी अयोध्या में ही है। जैसे मुंबई में घाटकोपर। भरत को तो 'मानस' ने 'साधु' कहा है, 'तात भरत तुम सब बिधि साधु।' साधु का आश्रम नगर में होना चाहिए कि वन में? सोसियल लाईफ़ जीनेवालों को सबके साथ रहना पड़े लेकिन उपर से उदासीन रहे और भीतर से रसयुक्त रहे। तो, तुलसी को जब पूछा गया कि साधु का आश्रम वन में होना चाहिए या या नगर में? तो तुलसीदास ने बहुत प्यारा जवाब दिया-

भरतहि अवसि देहु जुबराजू।
कानन काह राम कर काजू।।
नाहिन रामु राज के भूखे।
धरमधुरीन बिषय रस रूखे।।

ये व्यक्ति राम को अत्यंत प्रिय है, बाद में भले वो वन में रहे या नगर में रहे। पूरे चंपा के वन में भंवरे को छोड़ दो तो एक भी फूल की खुश्बू-रस नहीं पिएगा, वैसे भरत महाराज नंदिग्राम में आश्रम करके बैठे हैं। बिषयरस से उदासीन लेकिन अंदर से नीरस नहीं। साधुका एक लक्षण है, नीरस। साधु नीरस होना चाहिए। कपास का जो फूल होता है वो बिलकुल नीरस होता है। उसको आप पानी में भीगो दो तो उसकी बाती से कभी भी प्रकाश नहीं कर सकते आप। कपास स्वभावी साधु को नीरस रहना जरूरी है लेकिन अंदर से नहीं। वो ही कपास की रुई घी में डाल दो, फिर कांड़ी लगाओ, अखंड़ ज्योति जल जाती है। तुलसीदासजी ने साधु के चरित्र का पहला लक्षण ये बताया-

साधु चरित सुभ चरित कपासू।

जब हम और आप गुरुकृपा से संसार में होते हुए भी उदासीन जी सकते हैं कि गाली स्पर्श न करे, स्तुति स्पर्श न करे; कोई गले में माला पहनाए तो स्पर्श न करे। और एक वस्तु तो चोक्कस कि धर्म है वो फूलमाला है ही नहीं, वो धूंसरी है। और इसलिए हमारे यहां शब्द आया 'धर्मधुरंधर'; जिन्हों ने धूंसरी कंधे पर रखी है। फूल की माला पहनाओ, आदर है लेकिन फूल तो मुरझा जाएगा।

तो, धर्म धूंसरी है। धर्म फूलमाला तो है ही नहीं। सबके साथ रहकर आप अंदर से सबसे स्नेह और वात्सल्य की वर्षा करते हो और उपर से आप को किसीसे कोई रस लेना न हो। ये साधु है। साधु का पहला लक्षण ये नीरसता। नीरसता मानी एन्जोय नहीं करना ऐसा नहीं, लेकिन वो तुलना करता है कि बहिर्रस इतना रसिक है तो मेरे अंदर एक महारस उछल रहा है, वो रस क्या होगा? भवन में भी वन बन सकता है जो इस 'मानस' की फोर्म्यूला समझ में आ जाए। और ये फोर्म्यूला न आए तो वन में भवन बन जाता है। सामाजिक जीवन की जो बात है; गांधीजी ने बहुत सामाजिक काम किया लेकिन जब कागबापू को उसके बारे में लिखने को आया तो उसने गांधीबापू के संदर्भ में लिखा कि-

हळवो फेरवजे जूनो चाकडो,
चाकडे जूने उतारजे नवा घाट रे;

आखा देशना डाह्या! हळवो फेरवजे जूनो चाकडो। कोई कुंभार गांव में बरतन नहीं पकाता; निंभाडो दूर राखे। आजादी दे दी भारत को फिर गांधी के लिए ये पद लिखा गया कि 'निंभाडो दूर राखजे', मानी तू असंग रहना। तो, सामाजिक जीवन हमें जीना पड़ता है लेकिन इस बोध के साथ रहे। भगवान कृष्ण ऐसे रहे। कृष्ण सबके बीच में रहते हुए भी, नाचते-गाते हुए भी; जैसे कि मैंने कहा था कि कृष्ण के रास में निष्काम काम की बात आती है।

चौथा जीवन पोलिटिकल लाईफ़। राजकीय जीवन अपने ढंग से काम करता है। लेकिन मुझे जो कहना है वो ये है कि कुछ जीवन ऐसा है और उसके साथ जुड़ना चाहिए। एक जीवन है धार्मिक जीवन। अपनी-अपनी जो परंपरा है वो हमारा धार्मिक जीवन। लेकिन धार्मिक जीवन में भी संशोधन होना चाहिए। फिर एक जीवन होता है आध्यात्मिक जीवन। लेकिन आध्यात्मिक जीवन मानी क्या? तो फिर सातवीं जिंदगी का नाम मुझे देना है, और वो है, सत्य, प्रेम, करुणा। और इनमें इस करुणा की चर्चा इस कथा में चल रही है। और मैं आपसे निवेदन करूं कि 'कृपा' और 'करुणा' दोनों सगोत्र है। राम को आप 'कृपानिधान' भी कहो, 'करुणानिधान'भी कहो। लेकिन सूक्ष्मदृष्टि से देखने से अंतर भी महसूस होगा। 'रामायण' में दो व्यक्ति है, सुग्रीव और बालि। सुग्रीव है वो कृपापक्ष को ही जानता है; सुग्रीव जब भी बात करेगा तो कृपा। बालि करुणापक्षी है; उसने राम को कहा कि करुणा करो। ये आदमी मुझे करुणापक्षी लगता है। ठाकुर ने कहा कि मैं तुझे अचल कर दूं, अमर कर दूं। बालिने कहा, महाराज! आप कृपा कर रहे हैं लेकिन मुझे करुणा चाहिए। तो बोले, ये अचल करूं वो कृपा है तो करुणा कौन-सी? ऐसी आंख से एक बार देख ले दाता! जीना नहीं है, पूरा हो गया! और ध्यान रखना मेरे भाई-बहन कि कृपा आंख है, करुणा आंसू है। है जुड़े लेकिन बहे तब करुणा। इसलिए ये आदमी कहता है कि ऐसी आंख से देखना कि तेरी आंखें भी मैं नम देख पाऊं।

निगाहे पाक का आलम समझ में कुछ नहीं आता।
ना मिलती तो बेचेनी, मिल जाए तो और बेचेनी।

-राज कौशिक

न मिलती तो बेचेनी होती है कि क्यों ये करुणादृष्टि नहीं मिल पा रही है? और कभी करुणा मिल गई तो और बेचेनी, ओवरफ्लो हो जाते हैं! मैं आपसे बिनती करूं, हम सब पर कृपा नहीं है क्या? कृपा तो है, अब एकदूसरों के प्रति करुणा बहाने की जिम्मेवारी हमारी है। अब हम करुणा से जगत को सिक्त कर दे। तो-

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।।

मेरा अनुराग राजपद में था, मेरी किष्किन्धा! ये तेरी कृपा थी कि मेरा ऐसा साम्राज्य। और अब राजपद में अनुराग नहीं चाहता, रामपद का अनुराग चाहिए।

आपने कथा सुनी है। भगवान कृष्ण ने उद्धव को गोपियों के पास भेजा। इतना बडा बौद्धिक आदमी, ये उद्धव गोपीजनों को संदेश देने जाता है। और ज्ञान की पोटली बांधकर गया था! जमुना में ज्ञान बहाकर आंख से आंसू भरकर लौटा! गोपियों की भूरीभूरी प्रशंसा करता है कि ये वृंदावन की महिलाओं के चरणरेणु को मैं सिर पर चढ़ाना चाहता हूं। बहुत बड़ी दीक्षा लेकर लौटता है। भगवान कृष्ण को जब सब व्यस्तता से छुट्टी मिली। अकेले बैठे हैं तब उद्धव गया और रिपोर्ट दे रहा है। गोपीओं का इतना संदेश लेकर वो आया है और आदमी बिलकुल बदलकर आया है, जो कृष्ण का मिशन था। और कृष्ण की योजना सफल रही। लेकिन उस समय कृष्ण उद्धव के सामने कोई गोपियों की बात हीं नहीं करते। कृष्ण ने उद्धव का हाथ पकड़ा और कहा, 'मेरे साथ चलोगे?' 'कहां?' 'कृष्ण के पास जाना है।' उद्धव का तर्क-वितर्क शुरू हो गया कि मैं गोपीजनों की इतनी प्रेमपूर्ण चर्चा

कृपा आंख है, करुणा आंसू है। है जुड़े लेकिन बहे तब करुणा। हम सब पर कृपा नहीं है क्या? कृपा तो है, अब एकदूसरों के प्रति करुणा बहाने की जिम्मेवारी हमारी है। मुझे कहने दो, गोपियां साधु है। हा, साधु है। गोपी प्रेम की धजा है। कुब्जा गोपियों की तुलना में तो आ ही नहीं सकती। कहां गोपियों का प्यार, शील, त्याग, समर्पण और कहां ये दुर्भागा जिसको व्यास कहते हैं कुब्जा! वहां कृपा और करुणा का भेद नजर आता है। करुणा है वो पात्र-अपात्र नहीं देखती; साधु और असाधु को भी नहीं देखती। कुब्जा हो या राधा हो; करुणा सबको एक समान देखने लगती है। और सदैव करुणानिधान बुद्धपुरुषों ने असमर्थों को ही अपनाया है।

करता हूं और ये कृष्ण को याद करता है! अब कहां गोपी और कहां कृष्ण! और आज मुझे कहने दो, गोपियां साधु है। हा, साधु है। गोपी प्रेम की धजा है। कुब्जा गोपियों की तुलना में तो आ हीं नहीं सकती। कहां गोपियों का प्यार, शील, त्याग, समर्पण और कहां ये दुर्भागा जिसको व्यास कहते हैं कुष्जा! वहां कृपा और करुणा का भेद नजर आता है। करुणा है वो पात्र-अपात्र नहीं देखती; साधु और असाधु को भी नहीं देखती। कुष्जा हो या राधा हो; करुणा सबको एक समान देखने लगती है। और सदैव करुणानिधान बुद्धपुरुषों ने असमर्थों को ही अपनाया है। और आप मुझे शायद पूछे कि किसी करुणावान बुद्धपुरुष ने हमें अपना लिया तो उसका अनुभव हमें कैसे हो? ये प्रश्न उठना स्वाभाविक है। परमात्मा करुणा हम सब पर कर रहे हैं तो क्या प्रमाण उसका? प्रमाण 'गीतावली रामायण' में लिखा है। चार वस्तु मेरे और आपके जीवन में बने तो समझना, प्रभु ने करुणा से हमें भर दिया है। तुलसी ने बहुत अद्‌भुत काम कर दिया! हम जैसों को समझाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

मिटी मीचु, लहि लंक संक गइ,
काहूसो न खुनिअ खई।।

मेरे श्रोता भाई-बहन, आपके संग बैठकर मैं संवाद में बात कर रहा हूं। सिर्फ़ चार चीज। कृपा तो अनवरत बरस रही है। प्रभु ने हम को मनुषजनम दिया है। हम कमाते हैं। लेकिन करुणा हुई कि नहीं उसकी कसौटी चार। सिर्फ़ चार कसौटी। ये चार समझ में आ जाए, अनुभव में आ जाए और ऐसा जीवन यदि जीवन को तलाशो।

'मिटी मीचु।' पहला सूत्र, मृत्यु का भय मिट जाए। 'मिटी मीचु' का सीधा अर्थ होता है कि मृत्यु मिट जाए। लेकिन मृत्यु मिट नहीं सकती, मृत्यु का भय मिटता है। आम का पैड़ लगाओ तो उसमें फल आम का ही आएगा ना? करेला का थोड़ा आएगा? जीवन का फल मृत्यु हो सकता है? जीवन का फल जीवन होता है। सोचो मेरे भाई-बहन, जिंदगी का फल जिंदगी हो सकता है, मृत्यु हो ही नहीं सकता। आप कहेंगे कि तो मरते तो हैं! कृष्ण से पूछो। यद्यपि कृष्ण ने कहा, मृत्यु ध्रुव है, लेकिन कहता है फल तो जिंदगी ही है। ये तो वस्त्र बदलने की एक मात्र प्रक्रिया है। जीवन का फल जीवन ही होना चाहिए। और मैने तो कहा 'रामायण' के आधार पर कि छः वस्तु विधाता के हाथ है। मरण विधाता के हाथ है लेकिन कहो विधाता को मरण तेरे हाथ है, स्मरण तो मेरे हाथ मैं है! जीवन-मरण; यहां जीवन का फल मरण नहीं है। जीवन के बाद मरण और उसके बाद जो नया जीवन आनेवाला है वो जीवन का फल है। एक ये शरीर नया मिलेगा। लेकिन मृत्यु का भय मिट जाए। है तो मुश्किल, तैयारी करनी पड़ती है। 'मरीज़'साहब का एक गुजराती शे'र है-

जिंदगीना रसने पीवामां करो जल्दी 'मरीज़',
एक तो ओछी मदिरा छे ने गळतुं जाम छे।

मृत्यु के भय से मुक्त होना है तो हरिनाम का माध्यम काम कर सकता है। धीरे-धीरे तैयारी तो करनी पड़ेगी। करुणानिधान बुद्धपुरुष की हम पर करुणा हुई है तब मानना कि जब मृत्यु का भय मिट जाए। और कुछ न हो, रामकथा सुनते-सुनते सबका मृत्यु का भय मिट जाए। खूब जीओ, भरपूर जीओ। ये जीने योग्य दुनिया है लेकिन सामान कुछ ऐसा भी साथ में रखो कि मौत डराने न पाए। 'लहि लंक'; लंका का राज विभीषण को प्राप्त हुआ, इसका मतलब क्या? मृत्यु का भय मिट जाए, समझना करुणानिधान आत्मसात् हुआ है। और आंतर्-बाह्य तमाम संपत्ति परमात्मा चरणों में रख दे, तो समझना करुणा हुई है। करुणा करनेवाला हमें भिखारी नहीं रखता। वो हमें अभावग्रस्त नहीं रखता। आंतर्-बाह्य संपत्ति, लंका का शासन दे देता है। यानी करुणानिधान की करुणा तब महसूस करना कि मृत्यु का भय जाए और तमाम समृद्धि के अंदर प्रभु हम को रख दे।

तीसरा सूत्र, 'संक गइ'; जब तमाम संशयो निकल जाए। कोई संदेह जीवन में न बचे, कोई संदेह डाल न पाए, कोई संशय न रहे। विवेकानंदजी ने कहा था, 'विश्वास जीवन है, संशय मौत।' और केवल ग्रंथ पढ़ने से संशय जाते नहीं, 'गुरु बिन संशय ना मिटे।' फिर कभी संदेह पैदा ही न हो ऐसी दशा करुणानिधान की आत्मसात् होने की दशा है। 'काहूसो न खुनिस खइ।' 'खुनिस' का अर्थ है अप्रसन्नता। किसी भी घटना से हम अप्रसन्न न हो पाये तब समझना, करुणानिधान को हमने आत्मसात् कर लिया है। मुश्किल है। किसी भी घटना पर जो साधक कभी अप्रसन्न न हो, करुणानिधान को उसने आत्मसात् कर लिया है।

तो, मेरे भाई-बहन, सातवां जीवन है सत्य, प्रेम, करुणा। और करुणा जब इस रूप में अनुभव में आने लगे तो समझना कि करुणा बरस रही है। सत्य-प्रेम-करुणा बराबर जुड़े रहने चाहिए। यदि टूट गये तो त्रिकोण खंडित हो जाएगा। इतिहास में कई लोग है जिन्होंने केवल सत्य की सही उपासना की, तो उनका जीवन देखिए, वो प्रेम नहीं कर पाए। और कई लोग प्रेम करते हैं तो प्रेम करनेवाले की इर्ष्या करनेवाले पर कठोर हो जाते हैं, करुणा नहीं कर पाते। इसलिए मुझे लगता है कि सत्य-प्रेम-करुणा को पीछे से देखना पड़ेगा। जिस पर करुणानिधान की करुणा बरस गई वो प्रेम करता ही होगा। और जो प्रेम करता होगा वो सच्चा ही होगा।

तो, 'मानस-करुनानिधान' की चर्चा में कुछ जीवन के बारे में पूछा गया। करुणा बड़ा विस्तृत विषय है। लेकिन केवल बोलते और सुनते रहना पर्याप्त नहीं है, करुणा बहानी पड़ेगी। एक फूल है; यदि फूल को आप अपना मानते हो, इससे अपनी मोहब्बत है, तो आप प्रेमसूत्र को लिए बैठे हो लेकिन इस फूल को दूसरे व्यक्ति भी अच्छी निगाह से देखे तो भी प्रेम सह नहीं सकता, यदि प्रेमी में करुणा न हो तो। करुणा बहुत आवश्यक है।

जीवन का आखिरी अमृत है करुणा। और ये कथा क्या है? ये कथा स्वयं करुणा है। मैं तो ऐसा समझता हूं कि कथा प्रयत्नों से नहीं होती, केवल अस्तित्व की करुणा से होती है। मैं तो इस निष्कर्ष पर हूं। बाप! जानकी करुणानिधान को अतिशय प्रिय है-

जनक सुता जगजननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।

अब सीता की तरह हमें करुणानिधान के अतिशय प्रिय होना है तो जानकी के कुछ लक्षण आत्मसात् करने पड़ेंगे। जानकी करुणानिधान की अतिशय प्रिय हो गई तो सीता में ऐसा कौन मूल तत्त्व है जो करुणानिधान की अत्यंत प्रिया बना गया? दो-चार तत्त्व देखें; बाकी तो अगणित है।

पुष्पवाटिका में जानकीजी अभी खड़ी है। जो राम को देखकर आई है सखी उनका अनुगमन करती हुई सीयाजु, रामदर्शन के लिए सखीवृंद में पुष्पवाटिका में घूम रही है। यहां भगवान राम जानकी का दर्शन करते हैं। और बिलकुल आरपार दिल से लक्ष्मण के सामने अपनी मन:स्थिति का वर्णन करते हैं, 'लक्ष्मण! देख, ये जनकतनया जानकी है, जिसके कारण धनुषयज्ञ रचा गया है। लक्ष्मण! सीयाजु की अलौकिक रूप-माधुरी को देखकर मेरा पवित्र मन थोड़ा क्षुभित होता जा रहा है।'

भगवान राम कभी भी, कहीं भी जायेंगे, धनुष-बान साथ में होंगे। दो जगह है जहां धनुष-बान हाथ में नहीं है। एक, जनक की पुष्पवाटिका और दूसरा, तलगाजरडा का राममंदिर। पुष्पवाटिका में राम को निहत्था देखकर आज काम को हुआ कि राम को परास्त कर दूं। इसलिए काम मानो चढ़ाई करने आया है। थोड़ा सफल हुआ भी, राम के मन को क्षोभ हो गया। और कभी-कभी बेटा बाप की दाढी खिंचे तो बाप को अच्छा लगता है! कामदेव आखिर तो राम का बेटा है; तो बाप आज क्षुभित होने में भी राजी है! आज सहज ही पवित्र है मेरा मन। लेकिन जानकी का रूप अलौकिक होने के कारण सहज पवित्र मन का आकर्षण स्वाभाविक है।

भगवान प्रगट हुए है और जानकीजी अब बिलकुल देख पाए ऐसी स्थिति में आ गई उसी समय जो सखी अगवानी कर रही थी वो हट जाती है। सीधा संपर्क करा देती है। गुरु का काम है जीव को शिव के साथ जोड़ना। ऐसे समय में आश्रित का ये दायित्व नहीं है कि गुरु को हटाया जाए। गुरु समझदार होगा तो स्वयं हट जाएगा, बाधा नहीं बनेगा। जानकीजी सखियों के संग है। शालीन खानदान की बेटी है। क्या करती है? नेत्र को पंथ बनाया और आंखों के मारग से राम को निमंत्रण दिया कि इसी मारग से मेरे अंदर के कमरे में आ जाओ। जैसे राम की रूपमाधुरी जानकी की आंखों में उतरी ही; और जिस दरवाजे से रूप आया उस दरवाजे का कपाट जानकीजी ने बंद कर दिए। भाव में डूब गई सीता। जानकी को सखी ले जाती है। अब सीधा तो देख नहीं पाती लेकिन नाचते हुए मृगों के माध्यम से, खीले फूलों के माध्यम से, बहते झरणों के माध्यम से जानकीजी बार-बार मुड़-मुड़कर राम का दर्शन कर लेती है। गोस्वामीजी बहुत अद्‌भुत बात पेश करते हैं कि परमात्मा के दर्शन के भी रास्ते हैं कि खिलते हुए फूल के बहाने हरि को देख लो; झरणों के माध्यम से हरि को देख लो। सीयाजु सखीओं के संग लौटती है। अष्ट सखीओं के संग माँ की मूर्ति के सन्मुख स्तुति करती है।

जय जय गिरिबरराज किसोरी ।
जय महेस मुख चंद चकोरी ।।
जय गजबदन षडानन माता ।
जगत जननि दामिनि दुति गाता ।।

'बिनय प्रेम बस भई भवानी।' और साहब, विनय और प्रेम दो वस्तु किसको वश नहीं करती? और एक बार वश हो जाए तो कौन नहीं मुस्कुराएगा? 'खसी माल मूरति मुसुकानी।' धीरे-धीरे माला खसी। पार्वती बोली, तेरे मन में जो सांवरा बस गया है वो तुम्हें मिलेगा। तो, करुणानिधान सुजान राम तुम्हें मिलेगा ऐसा पार्वती ने आशीर्वाद भी दे दिया। और जिस पंक्ति की हम चर्चा कर रहे थे वो थी, 'अतिसय प्रिय करुनानिधान की।' ऐसा क्या हमारे में हो कि जानकीजी को करुणानिधान अतिशय प्रेम करे वैसा हमें भी करे। थोड़ा जानकीपना जरूरी है।

एक, जानकी किसी कूख से नहीं प्रगट होती, ये धरती की कूख से प्रगट होती है। उसको करुणानिधानतत्त्व अत्यंत प्रेम करेगा जो क्षमा की कूख से जन्मा होगा। क्षमा है पृथ्वी। जब हम क्षमाशील हो जाएंगे। 'वाल्मीकि रामायण' में तो जब हनुमानजी कूपित होकर अशोकवन में बंदिनी बनी है जो जानकीजी और उसे भयभीत कर रही है राक्षसियां और उसके बाद ये हनुमानजी राक्षसियां को जब दंड देने के लिए प्रस्तुत होते हैं, तब जानकीजी ने उसको रोका। क्षमा करने को कहती है जानकीजी। क्योंकि जानकी जन्मी है क्षमा की कूख से। ये पहला जानकीपना है उसका।

दूसरा जानकीपना है 'विनय प्रेम।' कभी-कभी प्रेम में आदमी विनय चुक जाता है। और कभी-कभी दांभिक विनय प्रेम तक पहुंचने नहीं देता। सीयाजु का जो विनय है, यदि ऐसा विनय साधक के मन में अंकुरित होगा तो हम भी कभी न भी करुणानिधान के अतिशय प्रिय हो जाएंगे। परम ऐश्वर्यमयी जानकी है। जिसके बारे में 'मानस' के 'बालकांड' में लिखा है कि ये संसार का उद्‌भव कर सकती है, परिपालन कर सकती है, लय कर सकती है। अपना जो भी सामर्थ्य हो वो दुनिया को दिखाना नहीं है, दुनिया की सेवा में लगाना है। ये जानकीपना का एक आगे का लक्षण है।

आगे का सूत्र, सहन करना। ये पडाव तो आएगा ही आएगा। जानकी ने सहन बहुत किया है। हमारे यहां तो हमारी सीमा है इसलिए प्रश्न उठता है कि कब तक सहन करें? जानकी ने बहुत सहा। आप सहन करेंगे तो दुनिया क्या त्रास देना बंद करेगी? लेकिन साधक को जानकीपना आ जाए और वो सोचे कि उसने त्रास देना बंद नहीं किया है तो मैं सहन करना कैसे बंद करूं? माँने कितना सहन किया! और सहन करे एनुं नाम माँ। वहां तक तो कौन पहुंचेगा? लेकिन जितने प्रतिशत हम आनेवाली परिस्थिति को मुस्कुराते हुए सहन कर ले तब समझना कि करुणानिधान के अतिशय प्रिय होने की एक वस्तु हमने पूरी कर ली।

बाप! गौरी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ सीयाजु को। सखीओं के संग घर गई। यहां रामजी पुष्प लेकर आते हैं विश्वामित्र के पास। पूजा की। वरदान प्राप्त किए। दूसरे दिन धनुषयज्ञ हुआ। कोई धनुष तिल के दाने की जगह हटा भी नहीं पाया उसी सभा में गजपंकज नाल की तरह रघुनाथजी ने धनुषभंग किया! सीयाजी ने जयमाला पहना दी। परशुराम आये वो भी जयजयकार करते गए! अयोध्या से बारात लेकर दशरथजी आते हैं और मागशर शुक्ल पंचमी, गोरज वेला और वेद और लोकरीति से विवाह संपन्न हुआ। अन्य तीनों भाईयों का विवाह भी उसी मंडप में संपन्न। कुछ दिन बारात स्नेहरज्जु से रुकी है। बाद में कन्याविदाय का प्रसंग आया। विदेहराज कन्याविदाय के समय ढीले हुए। बिदा दी। बारात पुत्र और पुत्रवधूओं के साथ अयोध्या आती है। बहुत मंगलमय वातावरण अयोध्या में। दिन बीतते गए और सब महेमानों को बिदा दी गई। और आखिर में महाराज विश्वामित्र बिदा मांगते हैं। पूरा राजपरिवार गद्‌गद्‌भाव से विश्वामित्र के सामने प्रस्तुत होता है। विश्वामित्र की बिदा हुई है।

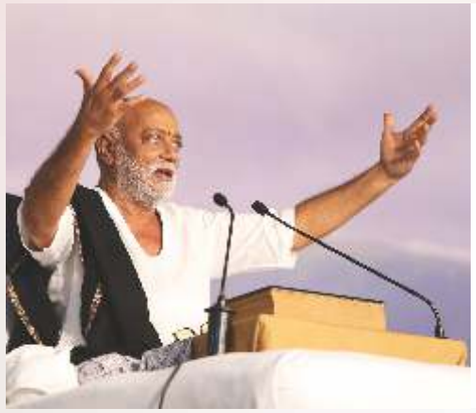

भगवद्कथा मानसिकता बदलने की प्रयोगशाला है

मानस-करुनानिधान : ९

'मानस-करुनानिधान', जो आपके सामने रखा गया उसकी कुछ उपसंहारक बातें आपके सामने आज विराम के दिन कर लें। दो-तीन जिज्ञासाएं है, आरंभ में उसको स्पर्श करूं। कल एक बात आपके सामने व्यासपीठ ने पेश की कि सीताजी करुणानिधान की अतिशय प्रिय कैसे बन पाई? उसकी कुछ मानवीय सद्गुण की चर्चा कल की। और इसमें सहन करो, क्षमा करो, बलिदान दो ये पहलू मुखर रहा। और तब व्यासपीठ का निवेदन रहा कि सहनशील हो वो ही माँ। और बात ये हैं जिज्ञासा में कि 'बापू! ये सब गुणों को केवल स्त्री को ही आत्मसात् करना है?' नहीं, यदि ब्रह्म की कोई जाति नहीं है तो बलिदान देना, सहन करना, धैर्य रखना, क्षमा करना ये सब मातृशरीर के ही भाग में, ऐसा क्यों? जिज्ञासाकर्ता ने मुझे ये भी बताया कि कुछ प्रांतों में किसी बेटी की शादी होती है तो सीता-राम का आशीर्वाद लोग नहीं देते हैं क्योंकि एक पक्ष ये रहा कि जानकी को बहुत सहन करना पड़ा। बहुत प्यारी जिज्ञासा है कि आज का जो विज्ञान विकास कर रहा है, क्या ये कुछ परिवर्तन न किया जाए?

मैं इतना ही कहूं कि पुरुष को भी ये सब गुण आत्मसात् करना चाहिए, करना चाहिए, करना चाहिए। लेकिन वो आत्मसात् करने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ेगा। और प्रयत्न के बाद भी वो कितनी मात्रा में आत्मसात् कर पाए, खबर नहीं! लेकिन मातृशरीर में ये सब लक्षण स्वाभाविक है। विज्ञान के ज़रिए इन मानवीय सद्गुणों को बदलने की चेष्टा मेरी दृष्टि में फलदायी नहीं हो सकती। जो सहज है, ये सब पुरुषो में होना ही चाहिए लेकिन जो माताओं में सहज है; हमारे यहां एक माँ; केवल एक माँ का रूप लीजिए; माँ दूध देती है संतान को ये माँ है। बेटी परिवार को पसीना देती है। बहन आंसू देगी। और पत्नी परिवार के लिए, समाज के लिए रक्त तक दे देती है। मेरी व्यासपीठ की दृष्टि से इन चारों मातृशरीर की जो विभावना है-माँ, बहन, पत्नी, बेटी; और ये सब इनमें स्वाभाविक है। जरूर मैं संशोधन को स्वीकारनेवाला आदमी हूं लेकिन मैं आपको पूछुं कि हमारे यहां बाजरी पकती थी, गेहूं पकता था, जुआर पकती थी देशी खाद से, उसकी जगह हमने रासायणिक खाद का वैज्ञानिक संशोधन के मुताबिक उपयोग शुरू किया। यद्यपि फसल ज्यादा मात्रा में पाई लेकिन इतनी ही मात्रा में लोगों ने स्वास्थ्य गंवाया! कहीं ऐसा न हो!

क्योंकि जो प्राकृतिक वस्तु है। और ये भी बात है कि जो इतना सहन करे आदि-आदि, जिसके लिए मैंने 'जानकीपना' शब्द युज़ क्यिा। ये पुरुष में भी आना चाहिए, ये बहुत आवश्यक है। विज्ञान के ज़रिए आज स्त्री-पुरुष में शारीरिक परिवर्तन भी किया जाता है। ठीक है; शारीरिक परिवर्तन विज्ञान कुछ कर भी दे लेकिन मानसिक परिवर्तन, जो सहज सद्गुण है। इसलिए हमारी परंपरा ने जब एक तटस्थ नीति आई, मातृशरीर को सदैव आगे रखा गया। समयांतर दुनियाभर के विचारों में उसमें परिवर्तन आया। मैथिलीशरण गुप्त की पंक्ति भी क्वोट की है कि-

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
है आंचल में दूध और आंखों में पानी।

और फिर एक चलचित्र की पंक्ति भी मेरे दिमाग को टटोलती है कि-

औरत ने जनम दिया मर्दों को,
और मर्दों ने उसको बाज़ार किया!

मूल जो महिमा है मातृत्व की अथवा नारीत्व की ये जहां तक मेरी समझ के आधार पर ये सबसे ऊंची रही है। ये शब्द बहुत युज़ हुआ है, 'पुरुषप्रधान समाज।' मैं फिर एक बार कहूं, ऋषि न स्त्री होता है, न पुरुष होता है। साधु निर्द्वंद्व चेतना होती है। ये भेद साधुओं का काम नहीं। नारी उपेक्षित नहीं होनी चाहिए। उस काल में जो हुआ सो हुआ उसमें से शिक्षा लेकर हमें बहुत संशोधन करना है। मैं संशोधनपक्षी हूं लेकिन कुछ वैज्ञानिक तरीकों से मानवीय सद्गुणों को नहीं बदला जाता है। मानसिकता तो बदलेगी केवल सद्विचारों से। उसकी प्रयोगशाला है सत्संग, भगवद्कथा। तो, पुरुषजाति ये न समझे कि राम को प्रिय होने के लिए ये मातृशरीर को ही ये सब करना चाहिए। जानकीपना तो पुरुष में भी आना चाहिए।

'हमारे में करुणा आ सकती है अथवा आ रही है या आई है उसकी महसूसी क्या है?' पहली महसूसी ये है मेरी समझ में, जब हमको लगे, हमारा द्वेष क्रमशः कम होता जा रहा है तब समझना, करुणा आई। भारतीय तत्त्वज्ञान कहता है कि गुरु-शिष्य में भी द्वेष न आ जाए। और समझ लेना मेरे भाई-बहन कि जब पूर्णतः द्वेष निकल जाए, तब समझ लेना, करुणानिधान के हम अतिप्रिय हो गए। इस जिज्ञासा में पूछा कि 'आप 'मानस' के आधार पर समझा रहे हैं; आपने तुलसीदासजी के भावानुसार बताया परंतु हमारी व्यासपीठ के भावानुसार ऐसी कौन-कौन सी महसूसी है कि जिनसे हमें लगे कि करुणानिधान ने हमें अपना लिया है?'

आप व्यासपीठ के विचार सुनना चाहते हैं तो मैं हाजिर हूं मेरी जिम्मेवारी के साथ। वो ही विचार कहूंगा जिसका मुझे अनुभव हुआ है। पहले तो ये समझ लो कि करुणानिधान की करुणा हम सब पर अनवरत बरस रही है लेकिन महसूस नहीं हो रही है क्योंकि कुछ मानसिक बाधाएं है। बहुत बड़ी खुश्बूदार मेहफिल हो, बाग हो; बहुत सुंदर सात्त्विक खुश्बूओं से भरा हो, तो सब जानते हैं कि हमारे शरीर में शरदी का प्रकोप हो तो मघमघती हुई फूलवाई में भी हम खुश्बू नहीं प्राप्त कर सकते। क्योंकि ये दोष खुश्बूओं का नहीं है, हमारी निज की शरदी का है। अस्तित्व यहां किस पर नहीं बरस रहा है? मैंने कल भी कहा कि अस्तित्व को पता नहीं है। आकाश तो बहुत बड़ा है लेकिन सब ग्रह अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार फायदा उठा रहे हैं। मैं आपसे एक बात कहूं, आप कभी 'रामचरित मानस' में से सुग्रीव और भरत को समान कह सकते हैं? स्पष्ट जवाब आपका आएगा कि हो ही नहीं सकता। लेकिन सुग्रीव जब भगवान का कार्य भूल गया, फिर शरण में आया, चार मास बीत गए, जानकी

की खोज का इस आदमी ने वादा किया था, कोई कार्य आरंभ नहीं किया लेकिन आया है तो कहता है, महाराज! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, भगवान पर सब उड़ेलता है। भगवान सुग्रीव की ये बातें सुनकर मुस्कुराए और फिर क्या कहते हैं?

तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ।

सुग्रीव! तू मुझे भरत के समान प्रिय लगता है। कहां भरत और कहां सुग्रीव? लेकिन आसमां के मन में कोई छोटा-बड़ा ग्रह नहीं रहता। करुणा ये भेद नहीं कर सकती। सुग्रीव को समझना चाहिए कि मुझे क्यों कम पड़ता है? ये उनकी पात्रता की कमी है। हम सब पर भी व्यासपीठ की करुणा पूरी की पूरी बरस रही है। व्यासपीठ की करुणा न होती तो मोरारिबापू बोल नहीं सकता और इतना सुंदर आयोजन नहीं हो सकता। तो, व्यासपीठ से आप यदि जानना चाहते हो तो मैं हाजिर हूं।

पहली वस्तु ये कि एक तो द्वेष निकल जाए तो करुणा महसूस होगी। हो तो रही है। व्यासपीठ के विचार है कि हम तभी उसको पूर्णरूप में आत्मसात् कर सकते हैं जब हमारा चित्त द्वेष से मुक्त होने लगे। और द्वेष हमारी कोई आवश्यक्ता नहीं है। क्या द्वेष न करेंगे तो भूखे रह जाएंगे? तो भी द्वेष है! कोई जगद्गुरु ही ऐसा कह सकते हैं कि 'न मैं द्वेषरागा।' तो, द्वेषमुक्त चित्त बरस रही करुणा का हमें अनुभव कराएगा। तो आप ये कहेंगे कि करुणा करनेवाला हमारे चित्त से द्वेष निकाल क्यों नहीं देता? वो तो सतत परिश्रम कर रहा है लेकिन हमने जकड़कर सिद्धांत बनाया है कि कुछ द्वेष के बिना हम प्रगति नहीं कर पाएंगे! तो, एक तो द्वेष।

दूसरा, शिकायतमुक्त चित्त। जब हमारे चित्त में किसी के प्रति कोई भी शिकायत न रहे। कंठ से कफ निकल जाता है तो आपकी आवाज़ जैसी थी वैसी हो जाएगी। हमारी सबकी तासीर वोही की वोही है लेकिन कंठ में कफ़प्रकोप है। जब मुशायरा होता है, डायरा होता हैं तो लोग दाद देते हैं, पैसे उड़ाते हैं। लेकिन जब तक दाद, तालियां पड़ती रहे, वो श्रेष्ठ प्रस्तुति नहीं है। श्रेष्ठ प्रस्तुति तो तब है कि तुम दाद देने के लिए भी काबिल न रहो। ताली पाड़ने की होंश और स्मृति भी तुम में न रहे; एक सन्नाटा! रास का अंतिम स्वरूप क्या था? तान था, गायन था, नृत्य था, लय था लेकिन जब रास पूर्णकक्षा में पहुंच जाता है तब एक सन्नाटा हो चुका था, पहले तो कृष्ण खो गया, अदृश्य हो गया। लेकिन उसके बाद सन्नाटे में जो एक स्थिति आई तब गोपियों को ये भी पता नहीं था कि कृष्ण है कि गया! मैंने ऐसी भी मेहफ़िल देखी है कि एक-दो जगह ऐसी प्रस्तुति के बाद सभा चूप हो गई और जब लोगों ने सिर उठाया तो सबकी आंख भीगी थी! बाप! वैसे ही पूर्णता की महसूसी तब होती है जब धीरे-धीरे हमारे चित्त से शिकायत छूट जाए।

तीसरी वस्तु, हम लायक है इसका दावा छूट जाए। ये सब व्यासपीठ के विचार है। ब्राह्मण जब तक दावा करे कि मंदिर में मैं ही प्रवेश कर सकता हूं, तो करुणानिधान की कृपा महसूस नहीं कर सकता। क्षत्रिय ये दावा करे कि मैं ही समाज की रक्षा कर सकता हूं, तो करुणा का पूर्ण अनुभव नहीं कर सकता। कोई भी सच्चा साधु कभी दावा नहीं करेगा। इसीलिए पहुंचे हुए फ़कीरों को पहचानना बहुत मुश्किल हो गया है। ओशो की मेगज़िन से पढ़ी हुई बात मेरे स्मरण में आती है कि जपान का कोई सम्राट कोई एक फ़कीर के आश्रम में जाता है। और एक आदमी वहां गड्ढा खोद रहा है। उसको जाकर सम्राट पूछता है कि मुझे उस महात्मा को मिलना है, मिलेंगे वो? तो गड्ढा खोदनेवाले आदमी ने कहा कि मिलेगा तो जरूर लेकिन थोड़ी देर बाद। आप अभी विश्राम कीजिए। आधा घंटा वो सम्राट वहां विश्राम करता है। उसके बाद वो दूसरे दरवाजे से एक आदमी आता है वो फ़कीर का गणवेश पहनकर आता है और अपने स्थान पर बैठ जाता है। सम्राट ने कहा कि ये तो आप ही है, जो गड्ढा खोद रहे थे! बोले, तू अभी तक वेश से ही पहचान सकता है!

ये घटना बनी हो या ना बनी हो। लेकिन संत दावा नहीं करता इसलिए सहज रह सकता है। जब दावा आया तब गया। आप इस कथा में विशेष रूप में सुन रहे हैं कभी भी ये दावा दिल में आने ही मत देना कि हम इतनी कथाएं सुन चुके हैं तो हमारा दावा है कि हमें सुविधा मिले। कृपा तो है ही, कृपा नहीं होती तो तुम कथा में आ ही नहीं सकते। नव दिन की कथा के बाद भी हम कुछ आत्मसात् न करे तो समझना कि हम दावेवाले आदमी है। दावा करने से जगह मिल सकती है, प्रतिष्ठा या पैसे भी मिल जाए लेकिन दावा क्या? यद्यपि संसार में ये सब करना पड़ता होगा। मुझे तो यहां बैठना पड़े क्योंकि बोलना है, बाकी मेरा कोई दावा थोड़ा है कि मेरी व्यासपीठ ऐसी इतनी ऊंची होनी चाहिए? याद रखो, रोई लेवुं पण राव न करवी। किससे राव करे? गोपीजन कुछ समय राव करती थी लेकिन धीरे-धीरे राव-फरियाद-दावा छूट गया। भरत कहता है, 'जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।'

मंदिर में बांकेबिहारी के दर्शन करने हम जाते हैं तो कृष्ण को हम देखते हैं, कृष्ण हमारे सामने देखता है? ये कभी दावा नहीं कि हमारे सामने नहीं देखा। हम तो उन्हें देख रहे हैं ना! कम से कम बीच में पर्दा तो नहीं है ना! बाप! मैं 'मानस' इतने सालों से गा रहा हूं लेकिन मैं ऐसा सोच सकता हूं कि मोरारिबापू 'मानस' का नववां विश्राम आज पढ़ रहा है तो 'मानस' को खबर है कि मोरारिबापू नववां विश्राम पढ़ रहे हैं? मैं ये कैसे अपेक्षा रखूं? मेरा दायित्व है, मैं पढ़ूं। ये है करुणा को आत्मसात् करने का एक तरीका।

आख़िर में, चित्त अकारण उग्र न हो। मेरा तो वहां तक पहुंचने का इरादा है कि कारण हो तो भी उग्र न हो। लाख कारण मिले फिर भी चित्त उग्र न हो। लेकिन हम संसारी लोग है। अभी उस मुकाम पर हमारे पैर गए नहीं तो कम से कम अकारण चित्त व्यग्र मत होने दो।

करुणानिधान की करुणा हम सब पर अनवरत बरस रही है लेकिन महसूस नहीं हो रही है क्योंकि कुछ मानसिक बाधाएं है। बहुत बड़ी खुश्बूदार मेहफिल हो, बाग हो; बहुत सुंदर सात्त्विक खुश्बूओं से भरा हो, तो सब जानते हैं कि हमारे शरीर में शरदी का प्रकोप हो तो मघमघती हुई फूलवाई में भी हम खुश्बू नहीं प्राप्त कर सकते। क्योंकि ये दोष खुश्बूओं का नहीं है, हमारी निज की शरदी का है। अस्तित्व यहां किस पर नहीं बरस रहा है? हम सब पर भी व्यासपीठ की करुणा पूरी की पूरी बरस रही है। व्यासपीठ की करुणा न होती तो मोरारिबापू बोल नहीं सकता और इतना सुंदर आयोजन नहीं हो सकता।

करुणा महसूस होगी। आदमी को उग्रता और व्यग्रता इतनी स्वाभाविक हो गई है कि कारण न हो तो भी वो कारण खोजता है! मेरे अनुभव में गुरुकृपा से कुछ ऐसा बैठा है कि निरंतर बरसती किसी करुणानिधान की करुणा को इन चैतसिक बाधाओं के कारण हम इतनी मात्रा में महसूस नहीं कर पा रहे हैं।

एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आन की।।

इस बानी का भाष्यकारों ने अर्थ किया है बाना। ये उनका बाना है, उनका बिरुद है। ऐसा कौन उसका बाना है कि प्रत्येक गति को साध कर साधक उसकी ओर जाए तो करुणानिधान बहुत प्रेम करने लगता है? ऐसा उसका बाना है तो कौन बाना है? परमात्मा का, बुद्धपुरुष का एक बाना ये है कि कैसा भी आदमी हो लेकिन सर्वतोमुखी गति छोड़कर, सभी गतिओं से मुक्त होकर उस परम की ओर ही एक मात्र गति करे; तो उसका बाना है कि 'तू मुझे प्रिय', ये कहना उसका बाना है। दूसरी एक हमारे यहां बात होती है कि गुरु ने कोई माला दे दी और हम माला पहनते हैं तो उसको भी गुरु का बाना मानते हैं। और इस बाने को जो निभाए उसको ये करुणानिधान बहुत प्रेम कर रहा है वो महसूस होगा। न निभाए तो प्रेम नहीं करता है ऐसा नहीं है। इसीलिए गुजराती में कहते हैं, 'बानानी लाज छे बाप!' सच्चा डोक्टर का एक बाना होता है कि मरीज़ों की लाईन है इनमें सब से ज्यादा बीमार कौन है उनकी पहली जांच करनी है। ये डोक्टर का बाना है, वैसे ही बुद्धपुरुष का बाना है कि दोष में आकंठ लुप्त है उसको पहले शरण में लिया जाए। और ऐसा बाना जिसका हो इसके बाने की थोडी इज्जत रखना ये हमारा कर्तव्य है। इसलिए स्वामी हरिहरानंदजी कहते हैं-

बानुं लजवाय नहीं हो, माळा छे डोकमां...

कई लोग मुझे कहते हैं कि बापू, हम अच्छे दफ्तरों में काम करते हैं, अच्छी पोस्ट है हमारी। पहले तो बहुत रिश्वत लेते थे, लेकिन जब से कथा सुनी है उसके बाद अब जब कोई रिश्वत देते हैं तो आपकी सफेद दाढी दिखती है! ये बाना है। हमारे राजुला तालुका में नागेश्री गांव है। और प्रतापभाई काठी दरबार है। क्षत्रिय है। तो मैं एक शादी में गया। सब क्षत्रियगण बैठे थे तो प्रतापभाई बोलने उठे कि 'बापू, आप कहते हैं कि बदला नहीं लेना चाहिए लेकिन बदला लेना हमारा स्वधर्म है।' मैंने सोचा कि ये प्रतापभाई क्या बोल रहे हैं? लेकिन बाद में उसने कहा, 'बापू, बदला लेना हमारा स्वधर्म है लेकिन अब जब हम बदला लेने जाते हैं तो चोपाईयुं आडी आवे छे!'

तो, मेरा यह बाना है कि जो बिलकुल अस्वस्थ है, मेरे पास आए तो मैं पहले इलाज उसका करता हूं। बुद्ध भगवान कहा करते थे कि डोक्टर की जरूर वहां है जहां बीमार ज्यादा हो। जिसस का भी ये वचन रहा। कृष्ण को भी लगा होगा कि राधा से ज्यादा मेरी जरूरत कुब्जा के पास है। मुझे तो लगता है कि वृंदावन समाज की कुब्जाओं के लिए शायद छोड़ा गया। नंद को छोड़ा; कम कष्ट नहीं हुआ होगा! ये तो कनैया जाने! यशोदा को छोड़ना कितना कठिन रहेगा! क्या पथ्थरदिल कर कृष्ण को निकलना पड़ा होगा! व्रज-वनिता-गोप-माता-पिता तो छोड़ो! व्रज के पैड़-पौंधे जो कृष्ण से मोहब्बत करते थे। कृष्ण निकलता था तो डालियां हिल-हिल कर कहती थी कि गोविंद, इधर आओ, इधर आओ। इतना ही नहीं, कृष्ण घनी कुंजगली से जाते थे तो कृष्ण के श्रीअंग को खीली लताएं आलिंगन करने लगती थी! क्या कृष्ण को ये पूरे चराचर के लिए कोई फिलिंग्स नहीं रही? थी, बहुत

थी। ये आदमी अकेले में बहुत रोया होगा। बशीर बद्र का शे'र है-

सोये कहां थे, आंख ने तकिये भिगोये थे।
हम भी किसी की याद में खूब रोए थे।

और अनुभव में तो लगता है कि आंसू बहुत बड़ी नींद है।

तो, ये बाना है। कृष्ण का बाना था 'परित्राणाय साधुनाम्।' करुणानिधान का एक बाना है, 'सखा वचन मम मृषा न होई।', मैं जो बोलूं वो कभी मृषा नहीं हो सकता; ये मेरा बाना है; ये व्रत है; ये प्रतिज्ञा है। मैं आपसे ये प्रार्थना करूं कि कोई गुरु की कृपा से कोई बुद्धपुरुष मिल जाए तो वो एक बार बोले उसमें मान जाना। त्रिसत्य करने की हमारे यहां प्रथा है लेकिन त्रिसत्य उनसे मत करवाना। आप कह सकते हैं कि भगवान के बचन मिथ्या नहीं हो सकते तो कृष्ण ने कहा था कि मैं आऊंगा; ये वचन का क्या हुआ? ऐसे समय में भी बोल कर आदमी न आए तो गीला कृष्ण को करने दो, तुम क्यों करते हो?

बाप! एक ओर बाना; एक बार जिसको निगाहों की करुणा में रख लिया उसको निगाहों से कभी गिराना नहीं, ये उनका बाना है।

एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आन की।।

ऐसी कुछ बातें इस कथा में चली 'मानस-करुणानिधान' को केन्द्रमें रखते हुए।

कथा के क्रम में फ़िर 'अयोध्याकांड' में रामवनवास होता है। प्रभु चित्रकूट जाते हैं। दशरथजी प्राणत्याग करते हैं। भरतजी चित्रकूट आते हैं। पादुका लेकर लौटते हैं। भगवान चित्रकूट से स्थलांतर करते हैं और प्रभु की पंचवटी की यात्रा होती है। रास्ते में छोटी-बड़ी लीलाओं को उजागर करते हुए पंचवटी आए। दंड़ित हुई शूर्पणखा। खर-दूषण को निर्वाण प्राप्त हुआ। रावण अपहरण की योजना करता है। सीता-अपहरण हुआ। जानकी के विरह में प्रभु विलाप करते-करते निकल पड़े। जटायु मिले। शबरी के आश्रम में प्रभु पधारे। नव प्रकार की भक्ति का दान दिया। उसके बाद प्रभु पंपा सरोवर के तट पर गए। वहां से भगवान आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुंचे। सुग्रीव और राम की मैत्री हुई। बालि को निर्वाणपद दे दिया। सुग्रीव को राजा बनाया। अंगद को युवराज बनाया। चातुर्मास प्रवर्षन पर्वत पर हुआ। उसके बाद जानकी की खोज के लिए सब बंदर-भालू निकल पड़े। हनुमानजीवाली टुकड़ी दक्षिण में गई। स्वयंप्रभा से मार्गदर्शन प्राप्त किया। जल पीकर तृप्ति हुई। समंदर के तट पर संपाति ने भी मार्गदर्शन दिया। निर्णय हुआ कि सीता अशोकवाटिका में है।

श्री हनुमानजी को जामवंत ने आह्वान दिया और हनुमानजी तैयार हुए। बाधाओं से मुक्त होते हुए वो विभीषण आदि से मिलकर जानकी के सन्मुख पहुंचते हैं। माता का आदेश लेकर मधुर फल खाते हैं और वहां फिर अपना परिचय देते हैं कि 'रामदूत मैं मातु जानकी।' श्री हनुमानजी ने लंकादहन किया। समुद्रस्नान करके माँ से चूडामणि प्राप्त करके हनुमानजी लौट पड़े। सब राजी हो गए कि माँ का पता मिल गया। विभीषण राम की शरण में आए।

भगवान की सेना ने प्रस्थान किया। समुद्र तट पर प्रभु व्रत लेकर बैठे। प्रभु ने नकली क्रोध किया। सागर शरण में आया। सेतुबंध हुआ। भगवान रामेश्वर की स्थापना हुई। लंका में सब जाते हैं। सुबेल पर प्रभु का मुकाम। यहां रावण का महारसभंग हुआ। दूसरे दिन अंगद गया। संधि नहीं हो पाई। युद्ध अनिवार्य हुआ। घमासाण

युद्ध हुआ। प्रभु ने रावण को निर्वाण दिया। विभीषण को राज्य प्राप्त हुआ। जानकीजी को फिर अग्नि से बुलाकर स्वीकारा गया। और फिर पुष्पक लेकर प्रभु अयोध्या की और प्रस्थान करते हैं और मुनिगणों से मिलते हुए भगवान का विमान निषादों के पास मिलने पहुंचे। हनुमानजी जाते हैं भरत को खबर देने। राम ने गुहराज की कुशलता पूछी।

'उत्तरकांड' में चौदह साल के विरही महापुरुष चिंता में है कि क्यों नहीं आए? कहीं देर न हो जाए! इतने में श्री हनुमानजी आते हैं, थाम लेते हैं भरत को। तीव्र गति से विमान आया। हजारों लोग राम के विरह में आतुर खड़े थे। सबसे पहले धनुष-बान छोड़कर वशिष्ठजी के चरणों में दंडवत् किया। भरत को गद्गद् मिले। सब मिले। अमित रूप धारण कर सब को साक्षात्कार प्रदान किया। अयोध्या में सबसे पहले भगवान माँ कैकेयी के भवन गए। जाकर माँ का संकोच मिटाते हैं। सभी माताओं से मिले। आज ही राम को राजतिलक का निर्णय हुआ। दिव्य सिंहासन पर सबको प्रणाम करते हुए राम सिंहासन पर बिराजमान; वामांके जानकीजी बिराजमान। और भगवान राम के भाल में विश्व को रामराज्य देते हुए वशिष्ठजी ने प्रथम तिलक किया-

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

चार वेद बंदीजन के रूप में राम के दरबार में आते हैं और चारों वेद ने स्तुति की। और उसके जाने के बाद महादेव कैलास से राज दरबार में आए हैं। ओर देवताओ तो चले गए थे! शंकर जैसों को ही रामराज्य में रुचि होती है। महादेव राम की स्तुति करते हैं। रामराज्य की स्थापना हुई। हनुमानजी के अलावा मित्रगणों को प्रभु ने बिदा दी।

उसके बाद सुंदर रामराज्य का वर्णन है और जानकी ने दो पुत्रों को जन्म दिया वो बात है। दूसरी बार का सीतात्याग तुलसीजी नहीं लिखते। जिसमें दुर्वाद और विवाद है ऐसे प्रसंग को तुलसी ने निकाल दिए हैं। इतनी कथा कह कर रघुवंश की कथा पूरी कर दी। वारिश के नाम देकर, आगे की कोई चर्चा तुलसी ने नहीं की। उसके बाद 'रामचरित मानस' में बाबा भुशुंडि की कथा है; गरुड के सात प्रश्नों की कथा है और आखिर में भुशुंडिजी गरुड के सामने रामकथा को विराम देते हैं। याज्ञवल्क्य महाराज ने भरद्वाजजी महाराज के सामने कथाविराम दिया कि नहीं स्पष्ट नहीं है। महादेव ने भी पार्वती के सामने कथाविराम दिया। और आखिर में तुलसी अपने मन को सुनाते हुए रामकथा को विराम देते हैं।

चारों परमाचार्यों ने अपनी-अपनी पीठ से रामकथा को विराम दिया। इन चारों परमाचार्यों की छाया में बैठकर ये व्यासपीठ मुखर हुई और अब मैं भी उसको विराम देने की ओर अग्रसर हूं। और ये त्रूटिमुक्त अनुष्ठान पूर्णता की और है तब हम सब मिलकर ये जो परिणाम है इसका, फल है; फल हम न ले क्योंकि हमने बिना फल लिए ओलरेडी नव दिन रस पिया है। लेकिन पितृपक्ष चल रहा है, दुनियाभर के पितृओं को ये रामकथा समर्पित करता हूं।

आखिर में मैरी प्रसन्नता व्यक्त करूं। प्रत्येक कथा में एक तो कथा का संकल्प सद्भावपूर्ण हो। हेतु कल्याणपूर्ण हो। और आयोजन और व्यवस्था सुंदर हो। कथा का संकल्प सद्भावपूर्ण हो उसको मेरी व्यासपीठ 'सत्यम्' कहेगी; हेतु कल्याणकारी हो उसको 'शिवम्' कहेगी और सात्त्विक सुंदरता से भरा आयोजन हो उसको 'सुंदरम्' कहेगी। हो गया सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् का त्रिकोण। मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। शुभकामना व्यक्त करता हूं कि खुश रहो, बाप!

मानस-मुशायरा

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
है आंचल में दूध और आंखों में पानी।

– मैथिलीशरण गुप्त

दिल के रिश्ते की नज़ाकत वो क्या जाने 'फ़राज़',
नर्म लब्जों से भी लग जाती है चोट अक्सर।

– अहमद फराज़

तुम्हारे बगैर मुकम्मल जिन्दगी न हुई।
खुशी का नाम सुना था, खुशी न हुई।

–जिगर मुरादाबादी

मज़ाक जिंदगी में हो ये तो कोई बात है।
मज़ाक जिंदगी से हो वो दिल को नापसंद है।

– मजबूरसाहब

मैं उससे नज़र मिलाते हुए भी डरता हूं।
आंखों आंखों में वो ज़हन पढ़ने लगता है।

– वसीम बरेलवी

सोये कहां थे, आंख ने तकिये भिगोये थे।
हम भी किसी की याद में खूब रोए थे।

– बशीर बद्र

यूं कहने से पहले बहुत सोचता हूं।
मैं जो भी कहूंगा वो सब मान लेगा।

– राज कौशिक

घड़ी अक्सर बदलती रहती है,
कभी मेरे हाथ पर कभी उसके हाथ पर।
पर वक्त कभी नहीं बदलता,
वो मेरा वक्त है और मैं उसका वक्त हूं।

– इमरोज़

कवचिदन्यतोऽपि

शिक्षण संस्था विचार में, विश्वास में, विनोद में, विवेक में और विश्राम में होनी चाहिए

'विद्याविहार' के वार्षिकोत्सव प्रसंग पर मोरारिबापू का प्रासंगिक प्रवचन

'विद्याविहार' शिक्षण संस्था के वार्षिकोत्सव पर उपस्थित सभी आदरणीय महानुभाव, अमिभावक परिसर के सदस्य, दोलुभाई हाजिर नहीं है, उन्हें भी याद करें। ऐसे सुंदर और सात्त्विक कार्यक्रम में प्रस्तुत करनेवालें भाई-बहनों, इतने वर्षों से इस संस्था के वार्षिकोत्सव में प्राय: आता रहा हूं, साक्षीरूप से देख रहा हूं। यह कार्यक्रम अधिकाधिक सात्त्विक सुंदर होता जा रहा है। कार्यक्रम की पसंदगी, मंचन, वेशभूषा सब कुछ सुंदर है। मैं तो हर जगह बैठता हूं। कभी मेरी मजबूरी भी होती है, कि किसी समारंभ में न बिठा जाय ऐसा भी होता है! परंतु यह एक साधु बैठकर देखे ऐसा कार्यक्रम था। इस स्कूल को प्रमाणपत्र नहीं देता पर मेरे हृदय के उद्‌गार है। कलियुग का प्रभाव हम सब पर है। तुलसीदासजी ने 'रामचरित मानस' में कहा है -

कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा ।

कलियुग का प्रभाव व्यापक होगा। पांच में से चार पांडव अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव जिज्ञासा करते हैं; धर्मराज नहीं करते। योगेश्वर कृष्ण से पूछते हैं, भगवन्, कलियुग कैसा होगा? कलिकाल की सर्वाभौम असर कैसी होगी? यह हमें बताइए। भगवान योगेश्वर कृष्ण के वचन आज चरितार्थ हो रहे हैं या नहीं ये आप सब निर्णय करे। आप इस पर सोचिए। भगवान ने चारों को धनुषबाण लेने के लिए कहा। सबसे पहले अर्जुन से कहा, 'तू सामनेवाली दिशा में बाण चला।' अर्जुन धनुर्धर है। वह बाण फेंकता है। पक्षी का बहुत ही सुंदर कूहना सुनाई देता है। भगवान ने कहा, तू वहां जाकर देख। पक्षी की कुहूक तेरे तीर के बाद सुनाई दी। अर्जुन जाकर लौट आता है। वहां क्या हो रहा है? वहां क्या था? यह मैं तुझे आखिर में पूछुंगा। तू बैठ जा। भीम से कहा। बाण फेंका। जाकर भीम लौटा। सहदेव और नकुल ने भी बाण फेंके। गए, लौट गए। अब भगवान अर्जुन से पूछते हैं, 'वहां क्या था?' अर्जुन ने कहा, सुंदर पक्षी था। अच्छी कुहूक थी। वह पक्षी कुहूक करके मरे पक्षी के शरीर में चोंच डालकर रक्त और मांस का भक्षण करता था। भीम से पूछा, कहा, मैंने चार कुएं देखें। छलकते थे। पर बीच का कुंआ खाली था। सहदेव ने कहा, गाय अपने बछड़े को चाट रही थी। इस क्रिया में वह बछड़े को स्वच्छ कर देती है। बछड़े की कोमल त्वचा लाल हो गई। पर चाटना बंद नहीं करती। बछ़डा गिर पड़ा, बेहोश हो गया। नकुल ने कहा, भगवन्, एक बहुत बड़ी शिला विनाश कर देगी ऐसी थी। मैंने सहसा देखा, धर की घास-तिनके शिला को रोक बैठे हैं।

भगवान कृष्ण ने पूछा इसका रहस्य समझे? नहीं प्रभु रहस्य ज्यादा गहरा होता जाता है। भगवान ने कहा, चारों भाइयों ने पूछा कलियुग का प्रभाव कैसा होगा इसका ये प्रत्यक्ष प्रमाण है। अर्जुन, तूने बाण फेंका, कलियुग का प्रभाव है कि आदमी मीठा बोलता होगा। उसकी कुहूक दिशाओं में फैलती रहेगी पर नजदीक जाये तो पता चले कि यह कितनों का रक्त पीता होगा! भीम, तूने देखा कि चार भरे कुओं के बीच का कुआ खाली है अर्थात् चारों ओर की वाह वाह से लोग प्रसिद्धि में डूबे होंगे पर बीच का कुंआ खाली है अर्थात् दीन-हीन गरीब बिलकुल अभावग्रस्त रहेगे। सहदेव से कहा, गाय बछडे को भले चाटे पर इतना नहीं कि खून निकले और बछडा बेहोश हो जाय। यह कलियुग का प्रभाव है कि माँ-बाप अधिक प्रेम करेंगे। बच्चे मूर्छित हो जायेंगे। आगे कहा, एक शिलाखंड गिरता है। सबको नष्ट करता है। तब तिनका रोकता है। यह भी कलि का प्रभाव है। हजारों आफतों के बीच हरिनाम का तिनका बचा लेगा। परम का आश्रय इस शिलाखंड से मुक्त रखेगा। ऐसा कलियुग का प्रभाव चारों ओर है। मीठा बोलनेवाले भारी शोषण कर रहे हैं। हम सुंदर बोलते हैं पर जीभ कुछ दूसरा ही भक्षण कर रही है। तुलसी ने लिखा -

मातु पिता बालकहि बोलावहिं ।
उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ।।

मैं अभिभावकों को प्रार्थना करूं कि आपके बच्चों को कार्यक्रम दिखाएं तो 'विद्याविहार' जैसे कार्यक्रम दिखाइयेगा। टी.वी. चेनल के अच्छे कार्यक्रम भी दिखाइए। आज पांच साल की बेटी टी.वी. देख देख जवान हो जाती है। रह समाज की करुणा है। स्वामीजी बैठे हैं। आज पूरा कार्यक्रम देखा। रस लेना गुनाह नहीं है। कार्यक्रम का मेसेज क्या है? वह क्या कहना चाहता है यह अत्यंत जरूरी है। हम छलक उठे और एक गरीब परिवार खाली रह जाय उस दिन हमारे छलकने का क्या अर्थ है? यहां कव्वाली प्रस्तुत हुई। गालिब का शे'र है -

बिस्तर बांध लिया है 'गालिब' मैने...

किसी ने कहा, मुझे हिन्दुओं से नफरत है। पर नफरत करने जाऊं तो कालिदास दिखता है। कैसे नफरत करूं? मुस्लीम से फनरत करूं तो 'गालिब' दिखते हैं।

ईसाई से नफरत करूं तो प्रेममूर्ति इसु दिखते हैं। ये सब बीच में आ जाते हैं। ऐसी बाधाओं के कारण ही नफरत नष्ट होगी। गालिब कहते हैं -

बिस्तर बांध लिया है 'गालिब' मैंने बताओ,
कहां रहते हैं वो लोग जो कहींके नहीं रहते?

सच्चे सर्जक, साधु, स्कूल, शैक्षणिक संस्थाओं को खोज निकालिए। जिसका कोई नहीं ऐसा समाज कहां रहता है? बच्चे मूर्छित हो जाय वैसा प्रेम मत कीजिए। एक तिनका शिलाखंड को रोकेगा। कलियुग के ऐसे भीषण प्रवाह से बचा लेगा। सबसे बड़ा दायित्व मेरी दृष्टि से शैक्षणिक संस्थाओं का है। थोड़ा नुक्सान हो; शिक्षणसंस्था चलती रहे तो कोई हर्ज नहीं है। पर समाज के सामने गलत दृष्टांत रखे ऐसा कभी न करे। एक साधु के रूप में अपेक्षा रखता हूं। ऐसा कहीं देखता हूं तो प्रसन्न हो जाता हूं। वार्षिकोत्सव तो पूरे साल की कमाई का परिणाम है। ऐसे कार्यक्रम संस्था का परिचय देते हैं। मुझसे पूछा गया, 'बापू, आप की दृष्टि में शिक्षण संस्था कैसी होनी चाहिए।?' पांच बातें कह कर पूरा करूंगा। भूमि की नहीं, भूमिका की बात करें। गुरुनानक कहते थे पहले ईश्वर चाबी बनाता है फिर ताला बनाता है। समझने जैसी बात है। हमारी समस्याओं के तालों की चाबी ईश्वर ने ओलरेडी बनाकर रखी है। तकलीफ़ क्या है? या तो गलत जगह रखी है या गलत हाथों में गुच्छा चल गया है! किसी सच्चे हाथ में आ जाय तो राष्ट्र के सभी ताले खुल जाय।

पांच बात कहनी है। अधिकाधिक श्रद्धा होती है। शिक्षण संस्था में विचार होना चाहिए। जिसमें नहीं है वो खाली व्यापार करते हैं। चाहे कहीं भी बांधिये वह मकान होगा, शिक्षण की महिमा नहीं। बुद्ध ने कहा यों सम्यक् विचार होना चाहिए। अति विचार पागल कर दे। गोहिल साहब ने कहा, हम लादे नहीं, शुरू तो कर सके। लादना हिंसा है। आपने विद्यार्थीयों को युनिफार्म मुक्त कर दिया। यह अच्छी चीज है। युनिफार्म आदमी को बांधती है। आर्मी के वस्त्र आदमी को मशीन बना देते हैं। आपने ठीक कदम उठाया। नचिकेता बहुत अच्छा बोला। इतना छोटा है। मोरारिबापू की दृष्टि में शिक्षण संस्थाओं में ऐसे विचार होने चाहिए। केवल विचार में रहे तो पगार कहां से निकाले?

दूसरा, शिक्षण संस्था विश्वास में होनी चाहिए। किसी परमतत्त्व पर उसे विश्वास होना चाहिए। मूल में अलग होनेवाले ज्यादा नहीं टिकते। शिक्षणसंस्था विश्वास में होनी चाहिए, संदेह में नहीं। जिज्ञासा रहे, प्रश्न पूछे जाय यह बराबर है। तीसरा, थोड़ा विनोद बना रहे। अपने चिंतक गुणवंत शाह तो हंमेशा कहते हैं, जिस दिन शिक्षक हंसे नहीं, उसे केज्युअल लीव लेनी चाहिए। बच्चे अच्छा मजाक कर गए!

चौथा, शिक्षणसंस्था में विवेक होना चाहिए। विवेक क्या करे? थोडीसी तालियों की उगाही के लिए मंच की मर्यादा नहीं छोड़नी चाहिए। आज देश में लोग तालियों की उगाही के लिए 'नो बोल' डालते हैं! कितना नुकसान होता है! अंत में शिक्षणसंस्था थकान उतारे, विश्राम में रहे। गोविंदभाई ने कहा, सरकार से भी पहले हमने बिना बोझ का शिक्षण देने का विचार किया है। मैं तो हंमेशा कहता हूं मुझे तो समाज को बिना बोझ का भगवान देना है। आदमी बिना बोझ का होना चाहिए। मेरी खेती तो दो मार्ग पर चलती है। एक 'मानस' और दूसरा 'मानव।' ये नहीं तो मेरी खेती नहीं। शिक्षण संस्था विचार, विश्वास, विनोद, विवेक और विश्राम में रहनी चाहिए।

'विद्याविहार' के वार्षिकोत्सव प्रसंग पर महुवा (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य, दिनांक : १-११-२०१५

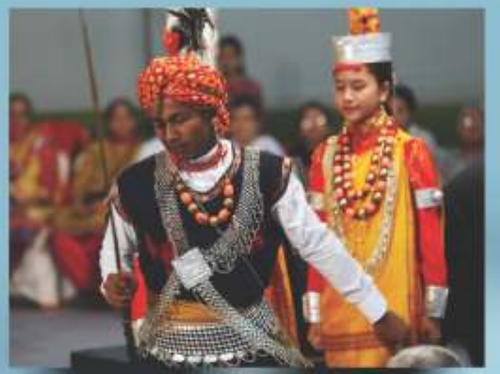

॥ जय सीयाराम ॥